प्रकाशकीय

अर्द्धमागधी जैन आगम-साहित्य भारतीय संस्कृति और साहित्य की अमूल्य निधि है। दुर्भाग्य से इन ग्रन्थो के अनुवाद उपलब्ध न होने के कारण जनसाधारण और विद्वद्वर्ग दोनो ही इनसे अपरिचित हैं। आगम ग्रन्थो मे अनेक प्रकीर्णक प्राचीन और अध्यात्म प्रधान होते हुए भी अप्राप्त से रहे हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि पूज्य मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित इन प्रकीर्णक ग्रन्थो के मूल पाठ का प्रकाशन महावीर विद्यालय-बम्बई से हुआ, किन्तु अनुवाद के अभाव मे जनसाधारण के लिए वे ग्राह्य नही थे। इसी कारण जैन विद्या के विद्वानो की समन्वय समिति ने अनूदित आगम-ग्रन्थो और आगमिक व्याख्याओ के अनुवाद के प्रकाशन को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया और इसी सन्दर्भ मे प्रकीर्णको के अनुवाद का कार्य आगम सस्थान को दिया गया। इसमे देविंदत्थओ (देवेन्द्रस्तव) अनुवाद सहित प्रकाशित किया जा चुका है।

हमे प्रसन्नता है कि सस्थान के शोध अधिकारी डॉ० सुभाष कोठारी ने 'तदुलवैचारिक-प्रकीर्णक' का अनुवाद सम्पूर्ण किया। प्रस्तुत ग्रन्थ की सुविस्तृत एव विचारपूर्ण भूमिका सस्थान के मानद् निदेशक प्रो० सागरमल जैन एव डॉ० सुभाष कोठारी ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की है इस हेतु हम इनके कृतज्ञ हैं। श्री सुरेश सिसोदिया भी सस्थान की प्रकीर्णक अनुवाद योजना मे सलग्न हैं इस हेतु उनके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

प्रकाशन की इस वेला मे हम सस्थान के मार्गदर्शक प्रो० कमलचन्दजी सोगानी एव मत्री श्री फतहलालजी हिंगर के भी आभारी हैं, जो सस्थान के विकास मे हर सम्भव सहयोग एव मार्गदर्शन दे रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन मे स्व० श्री खीवराज जी सा० चोरडिया के पारिवारिक जनो ने दस हजार रु० का अनुदान प्रदान किया, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। ग्रन्थ के सुन्दर एव सत्वर मुद्रण के लिए हम वर्द्धमान प्रेस के भी आभारी हैं।

गणपतराज बोहरा
अध्यक्ष

सरदारमल कांकरिया
महामत्री

अर्थ-सहयोगी

स्व० श्री खींवराज जो चोरड़िया—मद्रास : एक परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन मे स्व० सेठ श्री खीवराज जी चोरडिया की पुण्य स्मृति मे उनके परिवारजनो ने अर्थ सहयोग प्रदान किया है। स्व० सेठ खीवराज जी का जन्म नोखा (चदावत्ता) राजस्थान मे हुआ। अल्प-वय मे ही आप व्यवसाय हेतु मद्रास आ गये और अगरचन्द मानमल नामक फर्म पर कुछ व्यावसायिक योग्यता अर्जित कर स्वबुद्धि और मेहनत से अपना अलग से बिल्डर्स का कार्य प्रारम्भ किया। थोडे ही समय मे मद्रास के बिल्डरो मे आपका विशेष स्थान बन गया। आपने मद्रास एवं बैंगलोर मे इस कार्य के साथ-साथ 'खीवराज मोटर कम्पनी' नाम से वाहन उद्योग मे भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

आप जैन समाज के प्रमुख सेठ मोहनमल जी चोरडिया के अनुज थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती भवरी देवी चोरड़िया बहुत उदार हृदय की धर्मपरायण महिला हैं। आप भी धार्मिक एव शिक्षा सम्बन्धी कार्यो मे मुक्त हस्त से दान देती है। आपके श्री देवराज जी एवं नवरतन मल जी दो पुत्र हैं जो पिता की तरह ही उदार एव शिक्षाप्रेमी हैं।

सेठ खीवराज जी सा० प्रारम्भ से ही सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यों मे बहुत रूचि रखते थे। आपने नोखा मे स्थानक और स्कूल बनवाये एव कई समाजोपयोगी कार्य किये। आपने मद्रास मे लड़कियो के कालेज के लिए विशाल जमीन खरीद रखी है। जिस पर उनके पुत्र कॉलेज बनवाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

सस्थान के कार्यों मे आपके परिवार का सदैव योगदान रहा है। उनके इस योगदान के लिए सस्थान सदैव आभारी रहेगा।

विषयानुक्रम

भूमिका

प्रत्येक धर्म परम्परा मे धर्म ग्रन्थ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हिन्दुओं के लिए वेद, बौद्धो के लिए त्रिपिटक, पारसियो के लिए अवेस्ता, ईसाइयो के लिए बाइबिल और मुसलमानो के लिए कुरान का जो स्थान और महत्त्व है, वही स्थान और महत्त्व जैनो के लिए आगम साहित्य का है। यद्यपि जैन परम्परा मे आगम न तो वेदो के समान अपौरुषेय माने गये हैं और न ही बाइबिल और कुरान के समान किसी पैगम्बर के माध्यम से दिया गया ईश्वर का सदेश है, अपितु वे उन अर्हतो एव ऋषियों की वाणी का सकलन है, जिन्होने साधना और अपनी आध्यात्मिक विशुद्धि के द्वारा सत्य का प्रकाश पाया था। यद्यपि जैन आगम साहित्य मे अग सूत्रो के प्रवक्ता तीर्थंकरो को माना जाता है, किन्तु हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि तीर्थंकर भी मात्र अर्थ के प्रवक्ता है, दूसरे शब्दो मे वे चिन्तन या विचार प्रस्तुत करते हैं, जिन्हे शब्द रूप देकर ग्रन्थ का निर्माण गणधर अथवा अन्य प्रबुद्ध आचार्य या स्थविर करते हैं।[1] जैन-परम्परा हिन्दू-परम्परा के समान शब्द पर उतना बल नही देती है। वह शब्दो को विचार की अभिव्यक्ति का मात्र एक माध्यम मानती है। उसकी दृष्टि मे शब्द नही, अर्थ (तात्पर्य) ही प्रधान है। शब्दो पर अधिक बल न देने के कारण ही जैन-परम्परा के आगम ग्रन्थो मे यथाकाल भाषिक परिवर्तन होते रहे और वेदो के समान शब्द रूप मे अक्षुण्ण नही बने रह सके। यही कारण है कि आगे चलकर जैन आगम-साहित्य अर्द्धमागधी आगम-साहित्य और शौरसेनी आगम-साहित्य ऐसी दो शाखाओ मे विभक्त हो गया। यद्यपि इनमे अर्द्धमागधी आगम-साहित्य न केवल प्राचीन है, अपितु वह महावीर की मूलवाणी के निकट भी है। शौरसेनी आगम-साहित्य का विकास भी अर्द्धमागधी आगम साहित्य के प्राचीन स्तर के इन्ही आगम ग्रन्थो के आधार पर हुआ है। अत. अर्द्धमागधी आगम-साहित्य शौरसेनी आगम-साहित्य का आधार एव उसकी अपेक्षा प्राचीन भी है। यद्यपि यह अर्द्धमागधी आगम-साहित्य महावीर के काल से लेकर वीर निर्वाण सवत् ९८० या ९९३ की वलभी की वाचना तक लगभग एक हजार वर्ष की सुदीर्घ अवधि मे सकलित और

---

१. 'अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथंति गणहरा'—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ९२।

सम्पादित होता रहा है। अतः इस अवधि मे उसमे कुछ संशोधन, परि-वर्तन और परिवर्धन भी हुआ है।

प्राचीन काल मे यह अर्द्धमागधी आगम साहित्य अंग-प्रविष्ट और अंगबाह्य ऐसे दो विभागो मे विभाजित किया जाता था। अंग प्रविष्ट मे ग्यारह अंग आगमो और बारहवे दृष्टिवाद को समाहित किया जाता था। जबकि अंगबाह्य मे इसके अतिरिक्त वे सभी आगम ग्रन्थ समाहित किये जाते थे, जो श्रुतकेवली एवं पूर्वधर स्थविरो की रचनाएँ माने जाते थे। पुनः इस अंगबाह्य आगम-साहित्य को भी नन्दीसूत्र मे आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त ऐसे दो भागो मे विभाजित किया गया है। आवश्यक व्यतिरिक्त के भी पुनः कालिक और उत्कालिक ऐसे दो विभाग किये गये है। नन्दीसूत्र का यह वर्गीकरण निम्नानुसार है—

श्रुत (आगम)[1]
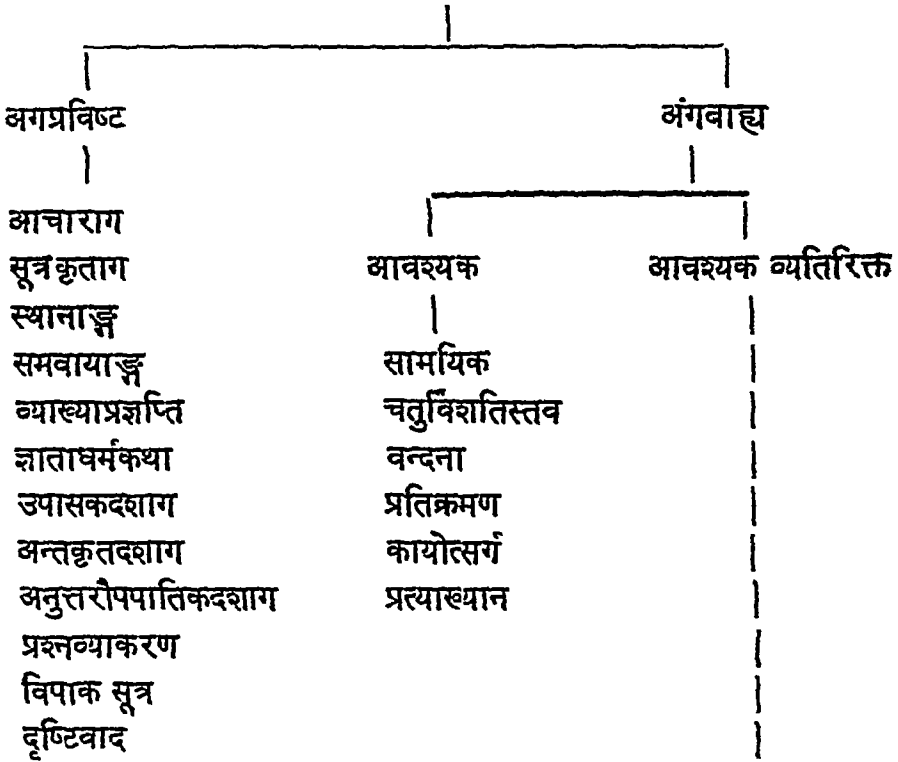
१. नन्दीसूत्र—सं० मुनि मधुकर, सूत्र ७६, ७९-८१।

कालिक

- उत्तराध्ययन
- दशाश्रुतस्कन्ध
- कल्प
- व्यवहार
- निशीथ
- महानिशीथ
- ऋषिभाषित
- जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
- द्वीपसागरप्रज्ञप्ति
- चन्द्रप्रज्ञप्ति
- क्षुल्लिकाविमान-प्रविभक्ति
- महल्लिकाविमान-प्रविभक्ति
- अगचूलिका
- वगचूलिका
- विवाहचूलिका
- अरुणोपपात
- वरुणोपपात
- गरुडोपपात
- धरणोपपात
- वैश्रवणोपपात
- वेलन्धरोपपात
- देवेन्द्रोपपात
- उत्थानश्रुत
- समुत्थानश्रुत
- नागपरितापनिका
- निरयावलिका
- कल्पिका
- कल्पावतंसिका
- पुष्पिका
- पुष्पचूलिका
- वृष्णिदशा

उत्कालिक

- दशवैकालिक
- कल्पिकाकल्पिक
- चुल्लकल्पश्रुत
- महाकल्पश्रुत
- औपपातिक
- राजप्रश्नीय
- जीवाभिगम
- प्रज्ञापना
- महाप्रज्ञापना
- प्रमादाप्रमाद
- नन्दी
- अनुयोगद्वार
- देवेन्द्रस्तव
- **तन्दुलवैचारिक**
- चन्द्रवेध्यक
- सूर्यप्रज्ञप्ति
- पौरुषीमडल
- मण्डलप्रवेश
- विद्याचरण विनिश्चय
- गणिविद्या
- ध्यानविभक्ति
- मरणविभक्ति
- आत्मविशोधि
- वीतरागश्रुत
- सलेखणाश्रुत
- विहारकल्प
- चरणविधि
- आतुरप्रत्याख्यान
- महाप्रत्याख्यान

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्दीसूत्र मे तदुलवैचारिक का उल्लेख अगबाह्य, आवश्यक-व्यतिरिक्त उत्कालिक आगमो मे हुआ है। पाक्षिकसूत्र मे भी आगमो के वर्गीकरण की यही शैली अपनायी गयी है। इसके अतिरिक्त आगमो के वर्गीकरण की एक प्राचीन शैली हमे यापनीय परम्परा के शौरसेनी आगम 'मूलाचार' मे भी मिलती है। मूलाचार आगमो को चार भागो मे वर्गीकृत करता है[1]—(१) तीर्थंकर-कथित (२) प्रत्येक-

१ मूलाचार—भारतीय ज्ञानपीठ-गाथा २७७

बुद्ध-कथित (३) श्रुतकेवली-कथित (४) पूर्वधर-कथित । पुन मूलाचार मे इन आगमिक ग्रन्थो का कालिक और उत्कालिक के रूप मे वर्गीकरण किया गया है। किन्तु मूलाचार मे कही भी तदुलवैचारिक का नाम नही आया है। अतः यापनीय परम्परा इसे किस वर्ग मे वर्गीकृत करती थी, यह कहना कठिन है।

वर्तमान मे आगमो के अग, उपाग, छेद, मूलसूत्र, प्रकीर्णक आदि विभाग किये जाते है। यह विभागीकरण हमे सर्वप्रथम विधिमार्गप्रपा (जिनप्रभ-१३वी शताब्दी) मे प्राप्त होता है।[1] सामान्यतया प्रकीर्णक का अर्थ विविध विषयो पर सकलित ग्रन्थ ही किया जाता है। नन्दीसूत्र के टीकाकार मलयगिरि ने लिखा है कि तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट श्रुत का अनुसरण करके श्रमण प्रकीर्णको की रचना करते थे। परम्परानुसार यह भी मान्यता है कि प्रत्येक श्रमण एक-एक प्रकीर्णक की रचना करता था। समवायाग सूत्र मे "चोरासीइ पण्णग सहस्साइ पण्णत्ता" कहकर ऋषभ-देव के चौरासी हजार शिष्यो के चौरासी हजार प्रकीर्णको का उल्लेख किया है।[2] महावीर के तीर्थ मे चौदह हजार साधुओ का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः उनके तीर्थ मे प्रकीर्णको की सख्या भी चौदह हजार मानी गयी है। किन्तु आज प्रकीर्णको की सख्या दस मानी जाती है। ये दस प्रकीर्णक निम्न है—

(१) चतु.शरण (२) आतुरप्रत्याख्यान, (३) महाप्रत्याख्यान (४) भक्तपरिज्ञा (५) तदुलवैचारिक (६) सस्थारक (७) गच्छाचार (८) गणिविद्या (९) देवेन्द्रस्तव और (१०) मरण समाधि।

इन दस प्रकीर्णको को श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय आगमो की श्रेणी मे मानते है। परन्तु प्रकीर्णक नाम से अभिहित इन ग्रन्थो का सग्रह किया जाये तो निम्न बाईस नाम प्राप्त होते हैं—

(१) चतुःशरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) भक्तपरिज्ञा (४) सस्थारक (५) तदुलवैचारिक (६) चद्रावेध्यक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान (१०) वीरस्तव (११) ऋषिभाषित (१२) अजीवकल्प (१३) गच्छाचार (१४) मरणसमाधि (१५) तित्थोगालि (१६) आराधना पताका (१७) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८) ज्योतिष्करण्डक (१९) अगविद्या (२०) सिद्धप्राभृत (२१) सारावली और (२२) जीवविभक्ति[3]।

---

१. विधिमार्गप्रपा—पृष्ठ ५५।

२. समवायाग सूत्र—मुनि मधुकर–८४वाँ समवाय

३. पइण्णयसुत्ताइ—मुनि पुण्यविजयजी–प्रस्तावना पृष्ठ १९।

इसके अतिरिक्त एक ही नाम के अनेक प्रकीर्णक भी उपलब्ध होते हैं। यथा—'आउर पच्चक्खान' के नाम से तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते है।

इनमे से नन्दी और पाक्षिक के उत्कालिक सूत्रो के वर्ग मे देवेन्द्रस्तव, तदुलवैचारिक, चन्द्रावेध्यक, गणिविद्या, मरणविभक्ति, मरणसमाधि, महाप्रत्याख्यान, ये सात नाम पाये जाते हैं और कालिकसूत्रो के वर्ग मे ऋषिभाषित और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ये दो नाम पाये जाते है। इस प्रकार नन्दी एव पाक्षिक सूत्र मे नौ प्रकीर्णको का उल्लेख मिलता है।[1]

यद्यपि प्रकीर्णकों की सख्या और नामो को लेकर परस्पर मतभेद देखा जाता है, किन्तु यह सुनिश्चित है कि प्रकीर्णको के भिन्न-भिन्न सभी वर्गीकरणो मे तदुलवैचारिक को स्थान मिला है।

यद्यपि आगमो की शृखला मे प्रकीर्णको का स्थान द्वितीयक है, किन्तु यदि हम भाषागत प्राचीनता और आध्यात्म-प्रधान विषय-वस्तु की दृष्टि से विचार करे तो प्रकीर्णक, आगमो की अपेक्षा भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते है। प्रकीर्णको मे ऋषिभाषित आदि ऐसे प्रकीर्णक हैं, जो उत्तराध्ययन और दशवैकालिक जैसे प्राचीन स्तर के आगमो की अपेक्षा भी प्राचीन है।[2]

तदुलवैचारिक-प्रकीर्णक—तदुलवैचारिक-प्रकीर्णक एक गद्य-पद्य मिश्रित रचना है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख नदी एव पाक्षिक सूत्र मे प्राप्त होता है। दोनो ही ग्रन्थो मे आवश्यक-व्यतिरिक्त उत्कालिक श्रुत के अन्तर्गत तदुलवैचारिक का उल्लेख मिलता है।[3] पाक्षिक सूत्र वृत्ति मे तदुलवैचारिक का परिचय देते हुए कहा गया है कि—"तदुलवेयालिय ति तन्डुलाना वर्षशतायुष्कपुरुषप्रतिदिनभोग्याना सख्याविचारेणोपलक्षितो

---

१ नन्दीसूत्र—मुनि मधुकर पृष्ठ ८०-८१।

२ ऋषिभाषित की प्राचीनता आदि के सम्बन्ध में देखें—
डॉ० सागरमल जैन–ऋषिभाषित एक अध्ययन (प्राकृत भारती सस्थान, जयपुर)।

३ (क) उक्कालिअ अणेगविह पण्णत्त तजहा—(१) दसवेआलिअ (१४) तदुलवेआलिअ एवमाइ।
(नन्दी सूत्र—मधुकर मुनि—पृष्ठ १६१-१६२)

(ख) नमो तेसि खमासमणाण, अगबाहिर उक्कालिय भगवत। तजहा—दसवेआलिअ' ' तदुलविआलिअ महापच्चक्खाण॥
(पाक्षिकसूत्र—देवचन्द्र-लालचन्द्र जैन पुस्तकोद्धार, पृ० ७६)

ग्रन्थविशेषस्तन्डुलवैचारिकं" अर्थात् सौ वर्ष की आयु वाला मनुष्य प्रतिदिन जितना चावल खाता है, उसकी जितनी संख्या होती है उसी के उपलक्षण रूप संख्या विचार को तंदुलवैचारिक कहते हैं।[1]

अन्य ग्रन्थो मे तदुलवैचारिक का उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है—

(१) आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुछ ग्रन्थों का अध्ययन एवं स्वाध्याय किसी निश्चित समय पर ही किया जाता है और कुछ ग्रन्थो का स्वाध्याय किसी भी समय किया जा सकता है। परम्परागत शब्दावली मे पहले प्रकार के ग्रन्थ कालिक और दूसरे प्रकार के ग्रन्थ उत्कालिक कहे जाते हैं। यहाँ भी तंदुलवैचारिक प्रकीर्णक का उल्लेख उत्कालिक सूत्र के रूप मे हुआ है।[2]

(२) दशवैकालिक चूर्णि मे जिनदासगणि महत्तर ने "कालदसा 'बाला मंदा, किड्डा' जहा तंदुलवेयालिए" कहकर तंदुलवैचारिक का उल्लेख किया है।[3]

(३) निशीथ सूत्र चूर्णि मे भी उत्कालिक सूत्रो के अन्तर्गत तदुलवैचारिक का उल्लेख मिलता है।[4]

लेखक एवं रचनाकाल का विचार—तदुलवैचारिक का उल्लेख यद्यपि नन्दीसूत्र आदि अनेक ग्रन्थो में मिलता है किन्तु इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध मे कही पर भी कोई निर्देश उपलब्ध नही होता है। जो संकेत हमे मिलते हैं उसके आधार पर मात्र यही कहा जा सकता है कि यह ५वीं शताब्दी या उसके पूर्व के किसी स्थविर आचार्य की कृति है। इसके लेखक के संदर्भ मे किसी भी प्रकार का कोई सकेत सूत्र उपलब्ध न हो पाने के कारण इस सम्बन्ध मे कुछ भी कहना कठिन है।

किन्तु जहाँ तक इस ग्रन्थ के रचना काल का प्रश्न है, हम इतना तो सुनिश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह ईस्वी सन् की ५वी शताब्दी के पूर्व की

---

१. (क) पाक्षिकसूत्र वृत्ति—पत्र—७७

(ख) अभिधान राजेन्द्र कोश, पृ० २१६८

२. आवश्यक चूर्णि-ऋषभदेव केशरीमल श्वे० संस्था—रतलाम, १९२९, भाग–२, पृ० २२४।

३. दशवैकालिक चूर्णि—रतलाम—१९३३, पृ० ५।

४. निशीथ सूत्र चूर्णि—भाग ४, पृ० २३५।

रचना है क्योकि तदुलवैचारिक का उल्लेख हमे नन्दीसूत्र एव पाक्षिक सूत्र के अतिरिक्त नन्दी चूर्णि, आवश्यक चूर्णि, दशवैकालिक चूर्णि और निशीथ चूर्णि मे मिलता है। चूर्णियो का काल लगभग ६-७वी शताब्दी माना जाता है। अतः तदुलवैचारिक का रचना काल इसके पूर्व ही होना चाहिए। पुन. तदुलवैचारिक का उल्लेख नन्दी सूत्र एव पाक्षिक सूत्र मे भी है। नन्दी सूत्र के कर्त्ता देववाचक माने जाते हैं। नन्दी सूत्र और उसके कर्त्ता देववाचक के समय के सन्दर्भ मे मुनि श्री पुण्यविजय जी एव प० दलसुख भाई मालवणिया ने विशेष चर्चा की है। नन्दी चूर्णि मे देववाचक को दूष्यगणी का शिष्य कहा गया है। कुछ विद्वानो ने नन्दीसूत्र के कर्त्ता देववाचक और आगमो को पुस्तकारूढ करने वाले देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को एक ही मानने की भ्राति की है। इस भ्राति के शिकार मुनि श्री कल्याण विजय जी भी हुए हैं, किन्तु उल्लेखो के आधार पर जहाँ देवर्द्धि के गुरु आर्य शाडिल्य हैं, वही देववाचक के गुरु दूष्यगणी हैं। अत. यह सुनिश्चित है कि देववाचक और देवर्द्धि एक ही व्यक्ति नही है। देववाचक ने नन्दीसूत्र स्थविरावली मे स्पष्ट रूप से दूष्यगणी का उल्लेख किया है।

प० दलसुख भाई मालवणिया ने देववाचक का काल वीर निर्वाण सवत् १०२० अथवा विक्रम सवत् ५५० माना है, किन्तु यह अन्तिम अवधि ही मानी जाती है। देववाचक उसके पूर्व ही हुए होगे। आवश्यक निर्युक्ति मे नन्दी और अनुयोगद्वार सूत्रो का उल्लेख हे, और आवश्यक निर्युक्ति को द्वितीय भद्रबाहु की रचना भी माना जाय तो उसका काल विक्रम की पाँचवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध ही सिद्ध होता है। इन सब आधारो से यह सुनिश्चित है कि देववाचक और उसके द्वारा रचित नन्दी सूत्र ईसा की पाँचवी शताब्दी की रचना है। इस सन्दर्भ मे विशेष जानने के लिए हम मुनि श्री पुण्य विजय जी एव प० दलसुख भाई मालवलिया के नन्दीसूत्र की भूमिका मे देववाचक का समय सम्बन्धी चर्चा को देखने का निर्देश करेंगे। चूँकि नन्दी सूत्र मे तदुलवैचारिक का उल्लेख है, अतः इस प्रमाण के आधार पर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ ईस्वी सन् की ५वी शताब्दी के पूर्व निर्मित हो चुका था। किन्तु इसकी अपर सीमा क्या थी, यह कहना कठिन है। स्थानाग सूत्र मे मनुष्य जीवन की दस दशाओ का उल्लेख हमे मिलता है। यह निश्चित है कि तदुलवैचारिक की रचना का आधार मानव-जीवन की ये दस दशाएँ ही रही हैं। इसी प्रकार तदुलवैचारिक मे गर्भावस्था का जो विवरण उपलब्ध होता है, वह पूर्ण रूप से भगवती सूत्र मे उपलब्ध है। इसमे वर्णित सहनन एव सस्थानो की

चर्चा भी स्थानाग, समवायाग एव भगवती मे उपलब्ध होतीहै। अतः हम यह कह सकते है कि इसकी रचना स्थानाग और भगवती सूत्र के पश्चात् ही कभी हुई होगी। स्थानाग मे महावीर के नौ गणो और सात निण्हवो का उल्लेख होने से उसे ईस्वी सन् प्रथम या द्वितीय शताब्दी के आसपास की रचना माना जाता है। यदि इसके रचना का आधार स्थानाग, भगवती, अनुयोगद्वार और औपपातिक को माना जाय तो हम यह कह सकते है कि तदुलवैचारिक की रचना ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी से ईस्वी सन् की ५वी शताब्दी के बीच कभी हुई होगी।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी इसका रचना काल यही माना जा सकता है, क्योकि इसकी भाषा भी महाराष्ट्री प्रभाव युक्त अर्द्धमागधी है। यद्यपि इसमे कुछ विवरण ऐसे भी है जो आवश्यक एव पक्खी सूत्र मे उपलब्ध होते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि के शरीर का जो वर्णन इसमे उपलब्ध होता है, वह प्रश्नव्याकरण मे भी उपलब्ध है। किन्तु उपलब्ध प्रश्नव्याकरण नन्दी और नन्दी चूर्णि के बीच कभी बना है, जबकि तदुलवैचारिक का उल्लेख स्वय नन्दी सूत्र मे है। अत यह मानना होगा कि प्रश्नव्याकरण मे यह विवरण या तो तदुलवैचारिक से या औपपातिक से लिया गया है। हमारी दृष्टि मे तीर्थकर चक्रवर्ती आदि शरीर सम्बन्धी यह विवरण औपपातिक से ही प्रश्नव्याकरण और तदुलवैचारिक मे आया होगा।

यद्यपि यह कल्पना भी की जा सकती है कि तदुलवैचारिक से ही यह समग्र विवरण स्थानाग भगवती, औपपातितक आदि मे गये हो, क्योकि तदुलवैचारिक अपने विषय का क्रमपूर्वक और सुनियोजित रूप से विवरण देने वाला एक सक्षिप्त ग्रन्थ है। और ऐसे सक्षिप्त ग्रन्थ अपेक्षाकृत रूप से प्राचीन स्तर के माने जाते हैं। चाहे हम इस तथ्य को स्वीकार करें या न करें किन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि तदुलवैचारिक ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक के बीच कभी निर्मित हुआ होगा।

विषय वस्तु—'तदुलवैचारिक' इस नाम से ऐसा प्रतीत होता है मानो इसमे मात्र चावल के बारे मे विचार किया गया होगा, परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नही है। इसमे मुख्य रूप से मानव-जीवन के विविध पक्षो यथा—गर्भावस्था, मानव शरीर-रचना, उसकी शत वर्ष की आयु के दस विभाग, उनमे होने वाली शारीरिक स्थितियाँ, उसके आहार आदि के बारे मे भी पर्याप्त विवेचन किया गया है। प्रत्येक ग्रन्थ की तरह इसके प्रारम्भ मे भी

मगलाचरण है। भगवान महावीर की वन्दना से यह ग्रन्थ प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् निम्न विषय क्रमानुसार वर्णित हैं—

गर्भावस्था—सर्वप्रथम इसमे गर्भावस्था का विस्तार से विवेचन किया गया है। सामान्यतया मनुष्य दो सौ साढे सत्तहत्तर दिन गर्भ मे रहता है। इस सख्या मे कभी-कभी कमी या वृद्धि भी हो सकती है। (२-८) इसके वाद गर्भ धारण करने मे समर्थ योनि का स्वरूप बतलाया गया है। साथ ही यह वतलाया गया है कि स्त्री पचपन वर्ष की आयु तक और पुरुष पचहत्तर वर्ष तक सन्तान उत्पन्न करने मे समर्थ होता है। (९-१३) माता के दक्षिण कुक्षि मे रहने वाला गर्भ पुत्र का, वाम कुक्षि मे रहने वाला पुत्री का और मध्य कुक्षि मे रहने वाला गर्भ नपुसक का होता है। गर्भगत जीव सम्पूर्ण शरीर से आहार ग्रहण करता है तथा श्वाँस लेता है और छोडता है। इसके आहार को ओज-आहार कहा जाता है। (१४-२१) गर्भस्थ जीव के तीन अग माता के एव तीन अग पिता के कहे गये हैं। गर्भ के मास, रक्त और मस्तक का स्नेह माता के एव हड्डी, मज्जा एव केश-रोम-नाखून पिता के अग माने गये हैं। (२५) गर्भ मे रहा हुआ जीव अगर मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो वह नरक एव देवलोक दोनो मे उत्पन्न हो सकता है। (२६-२७) गर्भगत जीव माता के समान भावो एव क्रियाओ वाला होता है अर्थात् माता के उठने, वैठने, सोने अथवा दु खी या सुखी होने पर वह भी उठता, वैठता, सोता है तथा दु खी या सुखी होता है। (२८) पुरुष, स्त्री और नपुसक की उत्पत्ति के वारे मे कहते हैं कि पुरुष का शुक्र अधिक एव माता का ओज कम हो तो पुत्र, ओज अधिक और शुक्र कम हो तो पुत्री और दोनो वरावर होने पर नपुसक की उत्पत्ति होती है। (३५) शरीर के अशुचित्त्व को प्रकट करते हुए कहा गया है कि अशुचि से उत्पन्न सदैव दुर्गन्ध युक्त मल मे भरे हुए इस शरीर पर गर्व नही करना चाहिए।

दस दशाएँ—गर्भावस्था के विवेचन के पश्चात् इसमे मनुष्य की सौ वर्ष की आयु को दस अवस्थाओ मे विभक्त किया गया है, जिनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं—(१) वाला (२) क्रीडा (३) मदा (४) बला (५) प्रज्ञा (६) हायणी (७) प्रपञ्चा (८) प्राग्भारा (९) मुन्मुखी और (१०) शायनी। (४५-५८) इन अवस्थाओ मे व्यक्ति को अपना समय जिन-भाषित धर्म का पालन करने मे विताना चाहिए। (५९-६३) व्यक्ति को यह विचार कभी नही करना चाहिए कि अभी तो इतने दिनो, महिनो अथवा वर्षों तक जीना है अत वाद मे व्रत-नियमो का पालन कर लूँगा।

क्योकि इस जीवन का क्षण भर का भी विश्वास नही है। यह कोई नहीं जानता कि कब रोग अथवा मृत्यु आकर हमे दबोच ले। (६४)

चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि की देह रिद्धि—पहले व्यक्ति हजारो, लाखो वर्ष जीवित रहते थे, उनमे जो विशिष्ठ, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, यौगलिक आदि पुरुष होते थे, वे अत्यन्त सोम्य सुन्दर, उत्तम लक्षणो से युक्त, श्रेष्ठ गज की गति वाले, सिंह की कमर के समान कटि प्रदेश वाले, स्वर्ण के समान क्रान्ति वाले, रागादि उपसर्ग से रहित, श्रीवत्स आदि शुभ चिह्नो से चिह्नित वक्षस्थल वाले, पुष्ट व मासल हाथो वाले, चन्द्रमा, सूर्य, शख, चक्र आदि के चिह्नो से युक्त हथेलियो वाले, सिंह के समान कन्धो वाले, सारस पक्षी के समान स्वर वाले, विकसित कमल के समान मुख वाले, उत्तम व्यञ्जनों, लक्षणो आदि से परिपूर्ण होते थे। (६५)

शतायुष्य मनुष्य का आहार परिमाण—सौ वर्ष जीने वाला मनुष्य बीस युग, दो सौ अयन, छः सौ ऋतु, बारह सौ महिने, चौबीस सौ पक्ष, चार सौ सात करोड़ अड़तालीस लाख चालीस हजार श्वासोश्वास जीता है और इस समयावधि मे वह साढ़े बाईस वाह तदुल खाता है। एक वाह मे चार सौ साठ करोड़ अस्सी लाख चावल के दाने होते हैं। इस प्रकार मनुष्य साढ़े बाईस वाह तदुल खाता हुआ साढ़े पॉच कुभ मूँग, चौबीस सौ आढक घृत और तेल, छत्तीस हजार पल नमक खाता है। अगर प्रति-माह वस्त्र बदले तो सम्पूर्ण जीवन मे बारह सौ धोती धारण करता है। यहाँ यह स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहे और उसके पास यह सब उपभोग योग्य सामग्री हो तभी इस सामग्री का उपभोग वह कर पाता है। जिसके पास खाने को ही नही हो वह इनका उपभोग कैसे करेगा ? (६६-८१)

समय उच्छ्वास आदि का काल परिमाण—सर्वाधिक सूक्ष्म काल का वह अंश जो विभाजित नही किया जा सके, समय कहलाता है। एक उच्छ्वास नि·श्वास मे असंख्यात समय होते हैं। एक उच्छ्वास नि·श्वास को ही प्राण कहते हैं, सात प्राणो का एक स्तोक, सात स्तोको का एक लव, सत्तहत्तर लवो का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त या साठ घड़ी का एक दिन-रात, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष और दो पक्ष का एक महिना होता है। (८२-८६) बारह मास का एक वर्ष होता है। एक वर्ष मे ३६० रात-दिन होते हैं। एक रात-दिन मे एक लाख तेरह हजार एक सौ नब्बे उच्छ्वास होते हैं। (९४-९८) इससे आगे व्यक्ति को आयु की अनित्यता का बोध कराते हुए कहते है कि अज्ञानी निद्रा, प्रमाद, रोग एव भय की

स्थितियो मे अथवा भूख, प्यास और कामवासना की पूर्ति मे अपने जीवन को व्यर्थ गवाते हैं अत. उन्हे चारित्र रूपी श्रेष्ठ धर्म का पालन करना चाहिए। (९९-१०७)

शरीर का स्वरूप—मनुष्य के शरीर मे पीठ की हड्डियो मे १८ सधियाँ हैं। उनमे से १२ हड्डियाँ निकली हुई हैं जो पसलियाँ कहलाती हैं। शेष छ. सन्धियो से छ हड्डियाँ निकल कर हृदय के दोनो तरफ छाती के नीचे रहती हैं। मनुष्य की कुक्षि बारह अगुल परिमाण, गर्दन चार अगुल परिमाण, बत्तीस दाँत और सात अगुल प्रमाण की जीभ होती है। हृदय साढे तीन पल का होता है। मनुष्य शरीर मे दो आँतें, दो पार्श्व, १६० सधि स्थान १०७ मर्म स्थान, ३०० अस्थियाँ, ९०० स्नायु, ७०० नसें, ५०० पेशियाँ, नौ रसहरणी नाडियाँ, सिराएँ, दाढी-मूछ को छोडकर ९९ लाख रोमकूप तथा इन्हे मिलाकर साढे तीन करोड रोमकूप होते है। मनुष्य के नाभि से उत्पन्न सात सौ शिराएँ होती हैं। उनमे से १६० शिराएँ नाभि से निकल कर सिर से मिलती हैं, जिनसे नेत्र, श्रोत, घ्राण और जिह्वा को कार्यशक्ति प्राप्त होती है। १६० शिराएँ नाभि से निकलकर पैर के तल से मिलती हैं, जिनसे जघा को बल प्राप्त होता है। १६० शिराएँ नाभि से निकलकर हाथ तल तक पहुँचती हैं, जिनसे बाहुबल प्राप्त होता है। १६७ शिराएँ नाभि से निकलकर गुदा मे मिलती हैं, जिनमे मलमूत्र का प्रस्रवण उचित रूप से होता है। मनुष्य के शरीर मे कफ को धारण करने वाली २५, पित्त को धारण करने वाली २५ और वीर्य को धारण करने वाली १० शिराएँ होती हैं। पुरुष के शरीर मे नौ और स्त्री के शरीर मे ग्यारह द्वार (छिद्र) होते हैं। (१०८-११३)

शरीर का अशुचित्व—इस ग्रन्थ मे शरीर को सर्वथा अपवित्र और अशुचिमय कहा गया है। शरीर के भीतरी दुर्गन्ध का ज्ञान नही होने के कारण ही पुरुष स्त्री शरीर को रागयुक्त होकर देखता है और चुम्बन आदि के द्वारा शरीर से निकलने वाले अपवित्र स्रावो का पान करता है। (१२०-१२९) इस दुर्गन्धयुक्त नित्य मरण की आशका वाले शरीर मे गृद्ध नही होना चाहिए। कफ, पित्त, मूत्र, बसा आदि मे राग बढाना उचित नही हे। जो मल-मूत्र का कुआँ है और जिसपर कृमि सुल-सुल का शब्द करते रहते हैं, उसमे क्या राग करना ? जिसके नौ अथवा ग्यारहद्वारो से अशुचि निकलती रहती है उस पर राग करने का क्या अर्थ है ? यहाँ कहते है कि तुम्हारा मुख मुखवास से सुवासित है, अग अगर आदि के उबटन से महक रहे हैं, केश सुगन्धित द्रव्यो से सुगन्धित है, तो हे मनुष्य ! तेरी अपनी

कौन सी गन्ध है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते है कि आँख, नाक और कान का मैल, कफ और मल-मूत्र आदि की गन्ध यही सब तो तेरी अपनी गन्ध है। (१३०-१५३)

स्त्री शरीर-स्वभाव—अनेक कवियो और लेखको ने स्त्रियो की प्रशसा मे रचनाएँ की हैं परन्तु यहाँ कहा गया है कि वास्तव मे वे ऐसी नही है। वे स्वभाव से कुटिल, अविश्वास का घर, व्याकुल चित्त वाली, हजारों अपराधो की कारणभूत, पुरुषो का वध स्थान, लज्जा की नाशक, कपट का आश्रय स्थान, शोक की जनक, दुराचार का घर, ज्ञान को नष्ट करने वाली, कुपित होने पर जहरिले साँप की तरह, दुष्ट हृदया होने से व्याघ्री की तरह और चंचलता मे बन्दर की तरह होती हैं। ये नरक की तरह डरावनी, बालक की तरह क्षणभर मे प्रसन्न या रूष्ट होने वाली, किंपाक फल की तरह बाहर से अच्छी लगने वाली, किन्तु कटु फल प्रदान करने वाली, अविश्वसनीय, दु ख से पालित, रक्षित और मनुष्य की दृढ़ शत्रु है। ये साँप के समान कुटिल हृदय वाली, मित्र और परिजनो मे फूट डालने वाली, कृतघ्न और सर्वाङ्ग जलाने वाली होती हैं।

इसी सन्दर्भ मे ग्रन्थ मे उनके नाम की अनेक निर्युक्तियाँ दी गयी हैं। पुरुषो का उनके समान अन्य कोई अरि (शत्रु) नही होने से वह नारी कही जाती है। नाना प्रकार से पुरुषो को मोहित करने के कारण महिला, पुरुषों को मद युक्त बनाती है इसलिए प्रमदा, महान् कष्ट उत्पन्न कराती है इसलिए महिलिका, योग-नियोग से पुरुषो को वश मे करने से योषित कही जाती है। ये स्त्रियाँ विभिन्न हाव-भाव, विलास, शृंगार, कटाक्ष, आलिङ्गन द्वारा पुरुषो को आकृष्ट करती हैं। सैकड़ो दोषो की गागर और अनेक प्रकार से बदनामी का कारण होती है। स्त्रियों के चरित्र को बुद्धिमान पुरुष भी नही जान सकते है फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ? इस कारण व्यक्ति को चाहिए कि वह इनका सर्वथा त्याग कर दें। (१५४-१६७)

धर्म का माहात्म्य—धर्म रक्षक है, धर्म ही शरणभूत है। धर्म से ही ज्ञान की प्रतिष्ठा होती है और धर्म से ही मोक्ष पद प्राप्त होता है। देवेन्द्र और चक्रवर्तियो के पद भी धर्म के कारण ही प्राप्त होते हैं और अन्तत: उसी से मुक्ति की प्राप्ति भी होती है। यही पर उपसंहार करते हुए कहते है कि इस शरीर का गणित से अर्थ प्रकट कर दिया है अर्थात् विश्लेषण करके उसके स्वरूप को बता दिया गया है जिसे सुनकर जीव सम्यक्त्व और मोक्ष रूपी कमल को प्राप्त करता है। (१७१-१७७)

तंदुलवैचारिकप्रकीर्णक और अन्य आगम ग्रन्थ
तुलनात्मक विवरण

[१] इमो खलु जीवो अम्मा-पिउसंजोगे माऊओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसंट्ठ कलुसं किब्बिसं तप्पढमयाए आहारं आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–१७)

[२] जीवस्स णं भते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वते इ वा पित्ते इ वा सुक्के इ वा सोणिए इ वा ? नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा ? गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारमाहारेइ त चिणाइ सोइंदियत्ताए चक्खुइंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए जिब्भिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से एएणं अट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जीवस्स ण गब्भ-गयस्स समाजस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–२०)

[३] जीवे णं भते ! गब्भगए समाणे पहू मुहेणं कावलियं आहार आहा-रित्तए ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ? गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ ऊससइ, सव्वओ नीससइ; अभिक्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खण ऊससइ, अभिक्खणं नीससइ; आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च ऊससइ, आहच्च नीससइ; से माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवंफुडा तम्हा आहा-रेइ तम्हा परिणामेइ, अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ तम्हा उवचिणाइ, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेण कावलियं आहारं आहारेत्तए ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–२१)

[१] गोयमा ! माउओय पिउसुक्क तदुभयसंसिट्ठं कलुस किव्विस तप्पढ-मताए आहारमाहारेति ।

(भगवती सूत्र—१-७-१२)

[२] जीवस्स ण भंते ! गब्भगतस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वंते इ वा पित्ते इ वा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जीवे ण गब्भगए समाणे जमाहारेति त चिणाइ तं सोतिंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से केणट्ठेण ।

(भगवती सूत्र—१-७-१४)

[३] जीवे ण भंते ! गब्भगते समाणे पभू मुहेण कावलिय आहार आहारित्तए ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेण ? गोयमा ! जीवे ण गब्भगते समाणे सव्वतो आहारेति, सव्वतो परिणामेति, सव्वतो उस्ससति, सव्वतो निस्ससति, अभिक्खण आहारेति, अभिक्खण परिणामेति, अभिक्खणं उस्ससति, अभिक्खण निस्ससति, आहच्च आहारेति, आहच्च परिणामेति, आहच्च उस्ससति, आहच्च निस्ससति । मातुजीवरसहरणी पुत्तजीवरस-हरणी मातुजीवपडिबद्धा पुत्तजीव फुडा तम्हा आहारेइ, तम्हा परिणामेति, अवरा वि य ण पुत्तजीव पडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाति, तम्हा उवचिणाति, से तेणट्ठेण० जाव नो पभू मुहेण कावलिय आहार आहारित्तए ।

(भगवती सूत्र—१-७-१५)

[४] जीवे ण भते ! गब्भगए समाणे किमाहार आहारेइ ?, गोयमा ! ज से माया नाणाविहाओ रसविगईओ तित्त-कडुय-कसायविल-महुराई दव्वाइ आहारेइ तओ एगदेसेणं ओयमाहारेइ।

(तदुलवैचारिक, सूत्र–२२)

[५] कइ ण भते ! माउअगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ माउअगा पण्णत्ता, त जहा—मसे १ सोणिए २ मत्थुलुगे ३। कइ णं भते ! पिउअगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ पिउअगा पण्णत्ता, त जहा—अट्ठि १ अट्ठिमिजा २ केस-मंसु-रोम-नहा ३।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–२५)

[६] जीवे ण भते ! गब्भगए समाणे नरएसु उववज्जिज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ जीवे ण गब्भगए समाणे नरएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ? गोयमा ! जे ण जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए विभगनाणलद्धीए वेउव्विअलद्धीए वेउव्वियलद्धिपत्ते पराणीअ आगय सोच्चा निसम्म पएसे निच्छुहइ, २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणइ, २ त्ता चाउरगिणि सेन्नं सन्नाहेइ, सन्नाहित्ता पराणीएण सद्धि सगाम सगामेइ, से ण जीवे अत्थकामए रज्जकामए भोगकामए कामकामए, अत्थकखिए रज्जकखिए भोगकखिए कामकखिए, अत्थपिवासिए रज्जपिवासिए भोगपिवासिए कामपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए, एयसि च ण अतरसि कालं करेज्जा नेरइएसु उववज्जेज्जा, से एएण अट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

(तदुलवैचारिक, सूत्र–२६)

[४] जीवे ण भते ! गब्भगए समाणे किमाहारमाहारेति ? गोयमा ! ज से माता नाणाविहाओ रसविगतीओ आहारमाहारेति तदेक्कदेसेण ओयमाहारेति।

(भगवती सूत्र—१-७-१३)

[५] कति ण भते ! मातिअगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ मतिअगा पण्णत्ता। तजहा—मसे सोणिते मत्थुलुगे।

कति णं भते ! पितियगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ पेतिअगा पण्णत्ता। तजहा-अट्ठि अट्ठिमिजा केस-मसु-रोम-नहे।

(भगवती सूत्र—१-७-१६-१७)

[६] (१) जीवे ण भते ! गब्भगते समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

(२) से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! से णं सन्नी पंचिदिए सव्वाहिं पज्जतीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए पराणीअ आगय सोच्चा निसम्म पदेसे निच्छुभति, २ वेउव्वियसमुग्घाएण समोहण्णइ, वेउव्वियसमुग्घाएण समोहण्णित्ता चाउरगिणि सेण विउव्वइ, चाउरगिणि सेण विउव्वेत्ता चाउरगिणीए सेणाए पराणीएण सद्धि संगाम सगामेइ, सेण जीवे अत्थ-कामए रज्जकामए भोगकामए, कामकामए अत्थकखिए रज्जकखिए भोग-कखिए कामकखिए अत्थपिवासिते, रज्जपिवासिते भोगपिवासिते काम-पिवासिते तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठो-वउत्ते तदप्पित्तकरणे तब्भावणाभाविते एतसि ण अतरसि काल करेज्ज नेरतिएसु उववज्जइ, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

(भगवती सूत्र—१-७-१९)

[७] जीवे णं भते ! गब्भगए समाणे देवलोएसु उववज्जेज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ? गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सण्णी पचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वेउव्वियलद्धीए वीरियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमवि आयरिय धम्मिय सुवयण सोच्चा निसम्म तओ से भवइ तिव्वसवेगसजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरायरत्ते, से ण जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए, धम्मकखिए पुन्नकखिए सग्गकखिए, मोक्खकखिए, धम्मपिवासिए पुन्नपिवासिए सग्गपिवासिए मोक्खपिवासिए, तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदप्पियकरणे तदट्ठोवउत्ते तब्भावणाभाविए, एयसि ण अतरसि कालं करेज्जा देवलोएसु उववज्जेज्जा, से एएण अट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

(तदुलवैचारिक, सूत्र–२७)

[८] जीवे ण भते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अबखुज्जए वा अच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा निसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा आसएज्ज वा सएज्ज वा माऊए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहिआए सुहिओ भवइ दुहिआए दुहिओ भवइ ? हता गोयमा ! जीवे ण गब्भगए समाणे उत्ताणए वा जाव दुक्खिआए दुक्खिओ भवइ।

(तदुलवैचारिक, सूत्र–२८)

[९] आउसो ! तओ नवमे मासे तीए वा पडुप्पन्ने वा अणागए वा चउण्हं माया अन्नयरं पयायइ। तं जहा—इत्थि वा इत्थिरूवेणं १ पुरिस वा पुरिसरूवेण २ नपुसगं वा नपुसगरूवेण ३ बिंब वा बिंबरूवेण ४।

(तदुलवैचारिक, सूत्र–३४)

[१०] अप्पं सुक्कं बहु ओय इत्थीया तत्थ जायई।
अप्पं ओय बहु सुक्कं पुरिसो तत्थ जायई।

(तदुलवैचारिक, गाथा–३५)

[७] जीवे ण भते ! गब्भगते समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अत्येगइए उववज्जेज्जा अत्येगइए नो उववज्जेज्जा।

से केणट्ठेण ? गोयमा ! से ण सन्नी पचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमवि आरिय धम्मिय सुवयण सोच्चा णिसम्म ततो भवति सवेगजातसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते, से ण जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए, धम्मकखिए, पुण्णकखिए सग्गकखिए, मोक्खकखिए धम्मपिवासिए पुण्णपिवासिए सग्गपिवासिए मोक्खपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिते ततिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवडत्ते तदप्पित्तकरणे तब्भावणाभाविते एयसि ण अतरसि काल करेज्ज देवलोएसु उववज्जति, से तेणट्ठेणं गोयमा !०।

(भगवती सूत्र—१-७-२०)

[८] जीवे ण भते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अबखुज्जए वा अच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा निसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा मातुए सुवमाणीए सुवति, जागरमाणीए जागरति सुहियाए सुहिते भवइ दुहिताए दुहिए भवति ?

हता, गोयमा ! जीवे ण गब्भगए समाणे जाव दुहियाए भवति।

(भगवती सूत्र—१-७-२१)

[९] चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, तजहा—इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपुसगत्ताते, बिंवत्ताए।

(स्थानांग सूत्र—४-४-६४२)

[१०] अप्प सुक्क बहु ओय इत्थी तत्थ पजायति।
अप्प ओय बहु सुक्क पुरिसो तत्थ जायति॥

(स्थानाग सूत्र—४-४-६४२)

(सग्रहणी गाथा)

[११] दोण्हं पि रत्त-सुक्काण तुल्लभावे नपुसगो।
इत्थीओयसमाओगे बिंबं तत्थ पजायइ ॥
(तदुलवेचारिक, गाथा–३६)

[१२] आउसो ! एवं जायस्स जतुस्स कमेण दस दसाओ एवमाहिज्जति। तं जहा—
बाला १ किड्डा २ मंदा ३ बला ४ य पन्ना ५ य हायणि ६ पवचा ७।
पब्भारा ८ मुम्मुही ९ सायणी य १० दसमा १० य कालदसा ॥
(तंदुलवैचारिक, गाथा–४५)

[१३] जायमित्तस्स जतुस्स जा सा पढमिया दसा।
न तत्थ सुक्ख दुक्खं वा छुह जाणति बालया १ ॥
(तंदुलवैचारिक, गाथा–४६)

[१४] बीयं च दस पत्तो नाणाकीडाहिं कीडई।
न य से कामभोगेसु तिव्वा उप्पज्जए मई २ ॥
(तंदुलवैचारिक, गाथा–४७)

[१५] तइय च दस पत्तो पच कामगुणे नरो।
समत्थो भुजिउ भोगे जइ से अत्थि घरे धुवा ३ ॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–४८)

[१६] चउत्थी उ बला नाम ज नरो दसमस्सिओ।
समत्थो बल दरिसेउं जइ सो भवे निरुवद्दवो ४ ॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–४९)

[१७] पचमी उ दसं पत्तो आणुपुव्वीइ जो नरो।
समत्थो अत्थ विंचितेउ कुडुब चाभिगच्छई ५ ॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–५०)

[१८] छट्ठी उ हायणी नाम ज नरो दसमस्सिओ।
विरज्जइ काम-भोगेसु, इदिएसु य हायई ६ ॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–५१)

[११] दोण्ह पि रत्तसुक्काणं तुल्लभावे णपुसओ।
इत्थी-ओय-समायोगे, विंव तत्थ पजायति ॥
(स्थानाग सूत्र—४-४-६४२)
(सग्रहणी गाथा)

[१२] वाससताउयस्स ण पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, तजहा—
सग्रह श्लोक—
वाला किड्डा य मदा य वला पण्णा य हायणी।
पवचा पब्भारा य मुम्मुही सायणी तधा ॥
(स्थानाग सूत्र—१०-१०-१५४)

[१३] जा यमित्तस्स जतुस्स जा सा पढमिया दसा।
ण तत्थ सुहदुक्खाइं वहु जाणति वालया ॥
(दशवैकालिक हारिभद्रीअ वृत्ति
पत्र ८, ९)

[१४] वियइ च दस पत्तो णाणाकिड्डाहिं किड्डइ।
न तत्थ कामभोगेहिं तिव्वा उप्पज्जई मई ॥
(ठाणं—नय० पृ० १०१५)

[१५] तइय च दस पत्तो पच कामगुणे नरो।
समत्थो भुजिउ भोए जइ से अत्थि धरे धुवा ॥
(ठाण—पृ० १०१५)

[१६] चउत्थी उ वला नाम ज नरो दसमस्सिओ।
समत्थो वल दरिसिऊ जइ होइ निरूवद्दवो ॥
(ठाण—पृ० १०१५)

[१७] पचमि तु दस पत्तो आणुपुव्वीइ जो नरो।
इच्छियत्थ विचिंतेइ कुडुवं वाऽभिकखई ॥
(ठाणं—पृ० १०१५)

[१८] छट्ठी उ हायणी नाम ज नरो दसमस्सिओ।
विरज्जइ य कामेसु इंदिएसु य हायई ॥
(ठाणं—पृ०-१०१५)

[१९] सत्तमी य पवंचा उ ज नरो दसमस्सिओ।
निट्ठुभइ चिक्कण खेल खासई य खणे खणे ७॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–५२)

[२०] संकुइयवलीचम्मो संपत्तो अट्ठमिं दसं।
नारीणं च अणिट्ठो उ जराए परिणामिओ ८॥
(तदुलवैचारिक, गाथा–५३)

[२१] नवमी मुम्मुही नाम जं नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्सते जीवो वसइ अकामओ ९॥
(तंदुलवैचारिक, गाथा–५४)

[२२] हीण-भिन्नसरो दीणो विवरीओ विचित्तओ।
दुब्बलो दुक्खिओ सुयइ संपत्तो दसमिं दसं १०॥
(तंदुलवैचारिक, गाथा–५५)

[२३] पुण्णाइं खलु आउसो! किच्चाइं करणिज्जाइ पीइकराइ वन्नकराइं धणकराइं कित्तिकराइं। नो य खलु आउसो! एवं चिंतेयव्वं—एंसति खलु बहवे समया आवलिया खणा आणापाणू थोवा लवा मुहुत्ता दिवसा अहोरत्ता पक्खा मासा रिऊ अयणा सवच्छरा जुगा वाससया वाससहस्सा वाससयसहस्सा, वासकोडीओ

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–६४)

[२४] ते ण मणुया अणतिवरसोम-चारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा सुजायसव्वंगसुदरंगा रत्तुप्पल-पउमकर-चरणकोमलगुलितला नग-नगर-मगर-सागरचक्कंकधरकलक्खणकियतला सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा अणुपुव्विसुजाय-पीवरंगुलिया उन्नय-तणु-तंब-निद्धनहा सठिय-सुसिलिट्ठ-गूढ-गोप्फा एणी-कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्विजघा सामुग्गनिमग्गगूढजाणू गयससण-सुजायसन्निभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कम-विलासियगई सुजायवरतुरयगुज्झदेसा आइन्नहउ व्व निरुवलेवा पमुइयवरतुरग-सीहअइरेगवट्टियकडी साहयसोणंद–मुसलदप्पण–निगरियवरकणगच्छरुसरिस–वरवइरवलियमज्झा गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभगुररविकिरणतरुण-बोहिय' उक्कोसायंतपउम-गंभीर-वियडनाभी उज्जुय-समसहिय-सुजाय-जच्च-तणु -कसिणनिद्ध-आएज्ज-लडह-सुकुमाल-मउय-रमणिज्जरोमराई झस-विहगसुजाय-पीणकुच्छी झसोयरा पम्हवियडनाभा संगयपासा सन्नयपासा सुदरपासा सुजायपासा

[१९] सत्तमिं च दस पत्तो आणुपुव्वीइ जो नरो।
निट्ठुहइ चिक्कण खेल खासइ य अभिक्खण ॥
(ठाण—पृ० १०१५)

[२०] सकुचियवलीचम्मो सपत्तो अट्ठमिं दस।
णारीणमणभिप्पेओ जराए परिणामिओ ॥
(ठाण—पृ० १०१५)

[२१] णवमी मम्मुही नाम ज नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्संतो जीवो वसइ अकामओ ॥
(ठाण—पृ० १०१५)

[२२] हीणभिन्नसरो दीणो विवरीओ विचित्तओ।
दुब्बलो दुक्खिओ सुवइ सपत्तो दसमिं दस ॥
(ठाणं—पृ० १०१५)
(दशवै० हारिभद्रीय वृत्ति ८,९)

[२३] असखिज्जाण समयाण समुदयसमितिसमागमेण सा एगा आवलि अतिवुच्चइ सखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो, सखिज्जाओ आवलियाओ नीसासो हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवक्किट्ठस्स जतुणो। एगे ऊसासनीसासे एस पाणु त्ति वुच्चइ। सत्तपाणूणि से थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्त पक्खा मासा उऊ अयण सवच्छरे जुगे वाससय वाससहस्स वाससयसहस्स।
(अनुयोगद्वार—भाग २ घासी०, पृ० २४८)

अथवा

पुव्वाणुपुव्वी समए आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते दिवसे अहोरत्ते पक्खे मासे उदू अयणे सवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससत-सहस्से।
(अनुयोगद्वार-मधु०, पृ० १२७)

[२४] णरगणा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा सुजायसव्वगसुदरगा रत्तुप्पलपत्तकतकरचरणकोमलतला सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा अणुपुव्व सुसहयगुलीया उण्णयतणुतबणिद्धणक्खा संठिय सुसिलिट्ठगूढगुफा एणीकुरु-विदवत्तवट्टाणुपुव्विजघा समुग्गणिसग्गगूढजाणू वरवारणमत्त-तुल्लविक्कम-विलासियगई वरतुरगसुजायगुज्झदेसा आइण्णहयव्वणिरुवलेवा पमुइयवर-

मियमाइय-पीण-रइयपासा अकरंडुयकणगरुयग- निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देहधारी पसत्थ-बत्तीसलक्खणधरा कणगसिलायलुज्जलपसत्थ-समतल-उवचिय-वित्थिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिह-वट्टियभुया भुयगीसरविउलभोगआयाणफलिह-उच्छूढदीहबाहू जुगस-न्निभपीण-रइय-पीवरपउट्ठसठिय-उवचिय-घण - थिर-सुबद्ध - सुवट्ट-सुसिलिट्ठ लट्ठपव्वसधी रत्ततलोवचिय-मउय-मसल-सुजाय-लक्खणपसत्थअच्छिद्द-जालपाणी पीवर-वट्टिय-सुजाय-कोमलवरंगुलिया तंब-तलिण-सुइरुइर-निद्धनक्खा चदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा सखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा सोत्थियपाणिलेहा ससि-रवि-सख-चक्क-सोत्थियविभत्त-सुविरइयपाणिलेहा वरमहिसवराह-सीह-सद्दूल-उसभ-नागवरविउल-पडिपुन्न-उन्नय-मउदक्खधा चउरंगुलसुपमाण-कबुवरसरिसगीवा अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमंसू मसल-सठिय-पसत्थ-सद्दूलविउलहणुया ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसन्नि-भाधरुट्ठा पडुरससिसगलविमल-निम्मलसख-गोखीरकुद-दगरय-मुणालिया-धवलदतसेढी अखडदता अफुडियदंता अविरलदता सुनिद्धदता सुजायदता एगदतसेढी विव अणेगदता हुयवहनिद्धंत-धोय-तत्ततवणि-ज्जरत्ततल-तालु-जीहा सारसनवथणियमहुरगंभीर-कुचनिग्घोस-दुदुहिसरा गरुलायय-उज्जु-तुगनासा अवदारिअपुडरीयवयणा कोकासियधवलपुडरीयपत्तलच्छा आनामियचावरुइल-किण्हचिहुरराइसुसठिय - संगय - आयय - सुजायभुमया अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा सुसवणापीणमसलकवोलदेस-भागा अइरुग्गय-समग्ग-सुनिद्धचदद्धसठियनिडाला उडुवइपडिपुन्नसोमवयणा छत्तागारुत्त-मगदेसा घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुन्नय-कूडागार [निभ-] निरुवमपिंडि-यग्गसिरा हुयवहनिद्धत-धोय-तत्ततवणिज्जकेसंतकेसभूमी सामलीबोडघण-निचियच्छोडिय-मिउ-विसय-सुहुम-लक्खणपसत्थ-सुगधि-सुदर-भुयमोयग-भिंग-नील-कज्जल - पहट्ठभमरगणनिद्ध - निउरबनिचिय -कुचिय-पयाहिणावत्तमुद्ध-सिरया लक्खण-वजणगुणोववेया माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वग-सुदरंगा ससिसोमागारा कता पियदंसणा सब्भावसिंगारचारुरूवा पासा-ईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥

(तंदुलवैचारिक, सूत्र-६६)

तुरगसीहअइरेगवट्टियकडी गगावत्तदाहिणावत्ततरगभगुर-रविकिरण-बोहियविकोसायतपम्हगभीर वियडनाभी उज्जुगसमसहियजच्चतणुक-सिणणिद्ध-आइज्जलडहसूमालमउयरोमराई झस-विहगसुजायपीणकुच्छी झसोयरा पम्हविगडनाभी सणयपासा सगयपासा सुदरपासा सुजायपासा मियमाइयपीणरइयपासा अकरडुयकणगरुयगणिम्मलसुजायणिरुवहय-देहधारी कणगसिलातलपसत्थ-समतल-उवइय-वित्थिण्णपिहुलवच्छा जुयसण्णिभपीणरइयपीवरपउट्ठसठिय-सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठमुणिचियघणथिर-सुवद्धसधी पुरवरफलिहवट्टियभूया।

भुयईसरविउल-भोगआयाणफलिउच्छूढदीहबाहू रत्ततलोवतियमउयमसलसुजाय-लक्खणपसत्थ-अच्छिद्दजालपाणी पीवरसुजाय-कोमलवरगुली तव-तलिग-सुइरुइलणिद्धणक्खा णिद्धपाणिलेहा चदपाणिलेहा, सूरपाणिलेहा सखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोवत्थियपाणिलेहा-रवि-ससि-सखवर-चक्कदिसासो-वत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा वरमहिसवराहसीहसद्दूल-रिसहणागवरपडिपुण्णविउलखधा चउरगुलसुप्पमाणकबुवरसरिसगीवा अवट्ठियसुविभत्तचित्तमसू उवचियमसल-पसत्थसद्दूलविउलहणुया ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरोट्ठा पडुरससिसकलविमलसखगोखीरफेण-कुददगरयमुणालिया-धवलदतसेढी अखडदता अप्फुडियदता अविरलदता सुणिद्धदता सुजायदंता एगदतसेढिव्व अणेगदता हुयवहणिद्धतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततला तालुजीहा गरुलायतउज्जुतुगणासा अवदालियपोडरीयणयणा कोकासियधवलपत्तलच्छा आणामियचावरुइलकिण्हब्भराजि-सठियसगयायसुजाय-भुमगा अल्लीणपमाणजुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसल-कवोलदेसभागा अचिरुग्गयबालचदसठियमहाणिलाडा उडुवइरिवपडिपुण्ण-सोमवयणा छत्तागारुत्तमगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणि-भपिडियग्गसिरा हुयवहणिद्धतधोयतत्ततवणिज्जरत्तकेसतकेसभूमी सामली-पोडघणणिचियछोडियमिउविसतपसत्थसुहुम - लक्खण - सुगधिसुदरभुय - मोयगभिंगणीलकज्जलपहट्ठभमरगणणिद्धणिगुरुबणिचियकुचियपयाहिणावत्त-मुद्धसिरया ।

(प्रश्नव्याकरण-मधु०, पृ० १२७-१२८)

(२५) ते णं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा हंसस्सरा कोचस्सरा नंदिस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरघोसा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणिप्फोस-पिट्ठंतरो-रुपरिणया पउमुप्पल गंधसरिसनीसासा सुरभिवयणा छवी निरायंका उत्तम - पसत्थाऽइसेस - निरुवमत - जल्लमल-कलंक-सेय-रय-दोसवज्जिद-सरीरा निरुवलेवा छायाउज्जोवियंगमंगा वज्जरिसहनारायसंघयणा समचउरंससंठाणसठिया ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–६७)

[२६] आसी य समणाउसो ! पुव्विं मणुयाणं छव्विहे संघयणे। तं जहा— वज्जरिसहनारायसंघयणे १ रिसहनारायसंघयणे २ नारायसंघयणे ३ अद्धनारायसंघयणे ४ कीलियासंघयणे ५ छेवट्ठसंघयणे ६। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं छेवट्ठे संघयणे वट्टइ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–६९)

[२७] आसी य आउसो ! पुव्विं मणुयाणं छव्विहे संठाणे। तं जहा—समचउरंसे १ नग्गोहपरिमंडले २ सादि ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६। संपइ खलु आउसो ! मणुयाणं हुंडे संठाणे वट्टइ।

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–७०)

[२८] आउसो ! से जहानामए केइ पुरिसे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सिरंसिण्हाए कंठेमालकडे, आविद्धमणि-सुवण्णे अहय-सुमहग्घवत्थपरिहिए चंदणोक्किण्णगायसरीरे सरससुरहिगंधगोसीसचंद-णाणुलित्तगत्ते सुइमालावन्नग-विलेवणे कप्पियहारऽद्धहार-तिसरय-पालंबपलं-वमाणकडिसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अंगुलेज्जगललियंगयललियकया-भरणे नाणामणि-कणग-रयणकडग-तुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए हारुच्छयसुकय-रइयवच्छे पालंबपलं-वमाण-सुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलिए नाणामणिकणग-रयणविमल-महरिह -निउणोविय-मिसिमिसित-विरइय- सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठआविद्धवीर-वलए। किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव अलंकिय-विभूसिए सुइपए भवित्ता"।

(तंदुलवैचारिक, त्रसू–७६)

[२५] अरहा जिणे केवली, सत्तहत्थुस्सेहे समचउरसठाणसठिए वज्जरिसह-नारायसघयणे अणुलोमवाउवेगे ककगहणी कवोयपरिणामे सउणिपोसपिट्ठ-तरोरूपरिणए पउमुप्पलगधसरिसनिस्सासुरभिवयणे छवी, निरायक-उत्तम-पसत्थ-अइसेयनिरुवमपले, जल्ल-मल्ल-कलक-सेय-रय-दोसवज्जिय-सरीसनिरुवलेवे छायाउज्जोइयगमगे ।

(औपपातिक सूत्र-मधुं०, पृ० १६)

[२६] छव्विहे सघयणे पण्णत्ते तजहा—वइरोसभ-णाराय-सघयणे, उसभ-णाराय-सघयणे, णारायसघयणे, अद्धणारायसघयणे, खीलिया-सघयणे, छेवट्टसघयणे ।

(स्थानाग-मधु०, पृ० ५४१-३०)

[२७] छव्विहे सठाणे पण्णत्ते, तजहा—समचउरसे, णग्गोहपरिमडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुडे ।

(स्थानाग—मधु०, पृष्ठ ५४१-३१)

[२८] तत्थ कोउसयएहिं वहुविहेहिं कल्लाणग-पवर-मज्जणा-वसाणे पम्हल-सुकुमाल-गध-कासाइय-लूहियगे सरस-सुरहि-गोसीस-चदणा-णुलित्त-गत्ते अहय-सुमहग्घ-दूस-रयण-सुसवुए सुइमाला-वण्णग-विलेवणे आविद्ध-मणि-सुवण्णे कप्पिय-हार-द्धहार-तिसरय-पालब-पलबमाण-कडिसुत्त-सुकय-सोभे पिणद्ध-गेविज्ज-अगुलिज्जग-ललियगयललिय-कया-भरणे वर-कडग-तुडिय-थभिय-भूए अहिय-रूव-सस्सिरीए मुद्दिया-पिंगल-गुलिए कुडल-उज्जोविया-णणे मउडदित्त-सिरए हारोत्थय-सुकय-रइय-वच्छे पालब-पलबमाण-पड-सुकय-उत्तरिज्जे णाणा-मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-णिउणो-विय-मिसिमिसत-विरइय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-सठिय-पसत्थ-आविद्ध-वीर-वलए ।

किं वहुणा ! कप्परुक्खए चेव अलकिय-विभूसिए णरवई

(औपपातिक—घासी०, पृ० ३९४-९९)

[२९] कालो परमनिरुद्धो अविभज्जो तं तु जाण समयं तु ।
समया य असंखेज्जा हवंति उस्सास-निस्सासे ॥

(तंदुलवैचारिक, गाथा–८२)

[३०] हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसास-नीसासे एस पाणु त्ति वुच्चइ ॥

(तंदुलवैचारिक, गाथा–८३)

[३१] सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे ।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥

(तंदुलवैचारिक, गाथा–८४)

एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया ऊसासा वियाहिया ? गोयमा !

[३२] तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥

(तंदुलवैचारिक, गाथा–८५)

[३३] दो नालिया मुहुत्तो, सट्ठिं पुण नालिया अहोरत्तो ।
पन्नरस अहोरत्ता पक्खो, पक्खा दुवे मासो ॥

(तंदुलवैचारिक, गाथा–८६)

[३४] आउसो ! जं पि य इमं सरीरं इट्ठं पियं कंतं मणुण्णं मणामं मणाभिरामं थेज्जं वेसासियं सम्मयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं, रयणकरंडओ विव सुसंगोवियं, चेलपेडा विव सुसंपरिवुडं, तेल्लपेडा विव सुसंगोवियं 'मा णं उण्हं मा णं सीयं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं वाला मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका फुसंतु'त्ति कट्टु । एवं पि याइं अधुवं अनिययं असासयं चओवचइयं विप्पणासधम्मं, पच्छा व पुरा व अवस्स विप्पचइयव्वं ॥

(तंदुलवैचारिक, सूत्र–१०८)

[२९] असंखिज्जाण समयाण समुदयसमिति-समागमेण सा एगा आवलि अत्तिवुच्चइ, सखेज्जाओ आवलियाओ ऊसासो, सखिज्जाओ आवलियाओ नीसासो।

[३०] हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जतुणो।
एगे ऊसास-नीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चइ ॥

[३१] सत्त पाणुणि से थोवे सत्त थोवाणि से लवे।
लवाण सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥
(अनुयोगद्वार—घासी०, पृ० २४८)

[३२] तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइ तेहुत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥
(अनुयोगद्वार—घासी०, पृ० २४८)

[३३] एएण मुहुत्त-पमाणेण तीस मुहुत्ता अहोरत्त।
पण्णरस अहोरत्ता पक्खा, दो पक्खा मासा ॥
(अनुयोगद्वार—घासी०, II—२४८)

[३४] ज पि य इम सरीर इट्ठ, कत, पिय मणुण्ण मणामं, पेज्ज, थेज्जं, वेसासियं समयं बहुमय अणुमय भडकरंडगसमाण मा ण सीयं मा णं उण्हं मा ण खुहा मा ण पिवासा, मा णं वाला मा ण चोरा मा ण दसा मा णं मसगा, मा ण वाइयपित्तियसनिवाइय विविहा रोगायका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु
(औपपातिकसूत्र—मधु०, पृ० १३८)

तंदुलवैचारिक-प्रकीर्णक की विषयवस्तु को मुख्य रूप से तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) मानव-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण

(२) मानव शरीर-रचना और

(३) स्त्री चरित्र का विवेचन

उपरोक्त तथ्यो की तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचना के सन्दर्भ मे सर्वप्रथम तदुलवैचारिक की मूलभूत दृष्टि को समझ लेना अति आवश्यक है। तंदुलवैचारिक मूलत- श्रमण परम्परा का अध्यात्म और वैराग्य प्रधान ग्रन्थ है। यह सत्य है कि उसमे मानव-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण एव मानव शरीर-रचना का विवेचन है, किन्तु उस विवेचन का मूल उद्देश्य मानव-शरीरशास्त्र एवं मानव-जीवन के स्वरूप को समझा कर, व्यक्ति को वैराग्य की दिशा मे प्रेरित करना है। हमे यह ध्यान मे रखना होगा कि तंदुलवैचारिक का लेखक शरीर-रचना विज्ञान का अध्यापक न होकर एक ऐसा भिक्षुक है जो जन-जन को त्याग और वैराग्य की दिशा मे प्रेरित करना चाहता है। उसका उद्देश्य शरीर एवं मानव जीवन के घृणित और नश्वर स्वरूप को उभार कर श्रोता के मन मे शरीर के प्रति निर्ममत्व जाग्रत करना है। इसलिए प्रत्येक चर्चा के पश्चात् वह यही कहता है कि इस नश्वर एवं घृणित शरीर के प्रति मोह नही करना चाहिए। वस्तुतः मानव जीवन मे जितने भी पाप या दुराचरण होते है अथवा नैतिक मर्यादाओ का भंग होता है, उसके पीछे मनुष्य की देहासक्ति और इन्द्रियपोषण की प्रवृत्ति ही मुख्य है। तदुलवैचारिक का रचनाकार साधक को देहासक्ति और इन्द्रियपोषण की इस प्रवृत्ति से विमुख करना चाहता है। यही कारण है कि उसने शरीर-रचना के उस पक्ष को अधिक उभारा है जिसे पढ़कर या सुनकर मनुष्यों मे देह के प्रति आसक्ति समाप्त हो और विरक्ति जाग्रत हो।

मानव शरीर की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण भी मूलतः इसी उद्देश्य से किया गया है कि मनुष्य वैराग्य की दिशा मे अग्रसर हो। मानव जीवन की दस दशाओ का विवेचन जैन परम्परा मे सर्वप्रथम स्थानांग सूत्र मे उपलब्ध होता है किन्तु उसके मूल पाठ मे केवल दस दशाओ का नामोल्लेख मात्र है, प्रत्येक दशा का विशिष्ट विवरण उपलब्ध नही है। यदि हम तदुलवैचारिक को निर्युक्ति के पूर्व की रचना मानते हैं तो हमे यह मानना

होगा कि इन दस दशाओ का विस्तृत विवरण सर्वप्रथम तदुलवैचारिक मे ही किया गया होगा। तदुलवैचारिक के अतिरिक्त दशवैकालिक निर्युक्ति की दसवी गाथा मे इन दस दशाओ का नामोल्लेख है। सर्वप्रथम हरिभद्र ने दशवैकालिक की टीका मे पूर्वमुनि-रचित दस गाथाओ को उद्धृत किया है। वे ही गाथाएँ अभयदेव ने अपनी स्थानाग वृत्ति मे भी उद्धृत की है। हमे ऐसा लगता है कि आचार्य हरिभद्र और आचार्य अभयदेव दोनो ने ही ये गाथाएँ तदुलवैचारिक से ही उद्धृत की होगी। दशवैकालिक की हरिभद्रीय टीका तथा स्थानाग की अभयदेववृत्ति मे ये गाथाएँ शब्दश: समान पायी जाती हैं। हरिभद्र द्वारा इन्हे पूर्वाचार्य कृत कहने से स्पष्ट है कि उन्होने इन्हे तदुलवैचारिक से ही लिया होगा। कालिक दृष्टि से भी तदुलवैचारिक की उपस्थिति के सकेत तो पाँचवी शती से मिलते हैं जबकि हरिभद्र आठवी शती के हैं।

इन दस दशाओ की विवेचना पर यदि हम गम्भीरता से विचार करें, तो यह पाते हैं कि इनमे से पाँच दशाएँ शरीर और चेतना के विकास को सूचित करती है और अन्त की पाँच दशाएँ क्रमश: शरीर एव चेतना के ह्रास को सूचित करती है। वस्तुत: यह मानव जीवन का यथार्थ है कि प्रथमत: मनुष्य के शरीर और बुद्धितत्त्व मे क्रमश: विकास होता है और फिर उसमे क्रमश ह्रास होता है। सामान्यतया तदुलवैचारिक का रचनाकार तथा हरिभद्र एव अभयदेव इन दस दशाओ के विवेचन के सन्दर्भ मे समान दृष्टिकोण रखते हैं। फिर भी जहाँ हरिभद्र ने नवी दशा को मृन्मुखी और दसवी दशा को शायिनी बताया है वहाँ अभयदेव नवी दशा को मुङ्मुखी और दसवी दशा को शायनी कहते हैं। दशाओ का यह विवेचन अनुभव के स्तर पर भी खरा उतरता है। तदुलवैचारिककार इन दशाओ के चित्रण के माध्यम से यही बताना चाहता है कि मनुष्य जिस देह के साथ अत्यन्त आसक्ति रखता है, वह देह किस प्रकार विकसित होती है और कैसे ह्रास को प्राप्त होकर नष्ट हो जाती है।

तदुलवैचारिक मे इन दस दशाओ के विवेचन के पूर्व मनुष्य की गर्भावस्था और उसमे होने वाले विकास का चित्रण किया गया है। गर्भावस्था के इस चित्रण मे ग्रन्थकार ने वही विवरण दिया है जो जैन और जैनेत्तर परम्पराओ मे सामान्यतया हमे उपलब्ध हो जाता है। इसमे गर्भाधान मे लेकर जन्म तक की समस्त विकास प्रक्रिया को दिखाया गया है कि गर्भावस्था मे मनुष्य की स्थिति कैसी-कैसी होती है एव उसकी

शरीर-रचना और उसके व्यक्तित्त्व के निर्माण मे किसका क्या सह-योग होता है, यह भी यहाँ चित्रित किया गया है। इस समग्र चिन्तन को भी हमे उसी दृष्टि से देखना होगा कि मानव जीवन की इस नश्वरता, क्षणभगुरता और अशुचिता से मनुष्य को कैसे मुक्त किया जा सके।

गर्भावस्था का यह चित्रण समकालीन मानव शरीर-रचना-विज्ञान से अनेक बातो मे संगति रखता है। विशेष रूप से स्त्री पुरुष की गर्भाधान सामर्थ्य, प्रत्येक माह मे होने वाला गर्भ का क्रमिक विकास आदि। यद्यपि इस सन्दर्भ मे प्रस्तुत सभी तथ्य आज वैज्ञानिको से पूर्णतया समर्थित है, ऐसा हम नही कह सकते किन्तु इसका बहुत कुछ विवरण विज्ञान सम्मत भी है, इससे इन्कार भी नही किया जा सकता।

शरीर की सरचना के सन्दर्भ मे लेखक ने अनुभूत तथ्यों को ही अपना आधार बना कर लिखा है किन्तु यह भी सत्य है कि उसमे जो हड्डियो, शिराओ आदि की सख्याएँ बताई गयी हैं वे आधुनिक मानव शरीर विज्ञान से मेल नही खाती है। जैसे तंदुलवैचारिक मानव शरीर मे ३०० हड्डियो की उपस्थिति मानता है जबकि आधुनिक मानव शरीर विज्ञान के अनुसार मनुष्य के शरीर मे २५२ अस्थियाँ ही पायी जाती हैं। यही स्थिति शिराओ आदि के सन्दर्भ मे भी समझनी चाहिए। वस्तुतः उस युग मे जिस स्तर पर अनुभूति सम्भव हो सकती थी, उसी स्तर पर रहकर प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा गया था। फिर भी उसका विवरण लगभग सत्य के निकट ही है। आज मानव शरीर विज्ञान और तदुलवैचारिक के विवरणो की तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

जहाँ तक तदुलवैचारिक मे वर्णित नारी-स्वभाव के चित्रण का प्रश्न है, निश्चय ही स्त्री के चरित्र का इतना विस्तृत, मनोवैज्ञानिक और भाषा-शास्त्रीय विवेचन जैन आगमो मे अन्यत्र उपलब्ध नही होता है। यद्यपि सूत्रकृतांग के स्त्री परिज्ञा नामक अध्ययन मे हमे सर्वप्रथम नारी-चरित्र का उल्लेख मिलता है, जिसमे मुख्य रूप से यह बतलाया गया है कि स्त्री भिक्षु को अपने पाश मे फँसाकर फिर उसके साथ कैसा दुर्व्यवहार करती है। यद्यपि नारी के चरित्र चित्रण मे तदुलवैचारिक और सूत्रकृताग दोनों का दृष्टिकोण समान ही है और कुछ स्थलो पर दोनो मे शाब्दिक समानता भी पायी जाती है। दोनो ही यह मानते हैं कि नारी-चरित्र को समझ लेना विद्वानो के लिए भी दुष्कर है। फिर भी इतना तो अवश्य मानना ही होगा कि तंदुलवैचारिक का यह विवरण सूत्रकृताग के स्त्री परिज्ञा के विवरण

की अपेक्षा विकसित है और किसी सीमा तक परवर्ती भी। तदुलवैचारिक नारी-चरित्र का किस रूप मे चित्रण करता है इसकी चर्चा हम पूर्व मे तदुलवैचारिक की विषयवस्तु के विवरण के समय कर चुके हैं।

यह तो निश्चित ही सत्य है कि तदुलवैचारिक नारी-चरित्र को एक तरह से निन्दनीय रूप मे प्रस्तुत करता है। नारी निन्दा की जो सामान्य प्रवृत्ति श्रमण परम्परा मे पायी जाती है, तदुलवैचारिक भी उससे मुक्त नही है। यह सत्य है कि तदुलवैचारिक नारी जीवन के विकृत पक्ष को ही हमारे सामने प्रस्तुत करता है। नारी के पर्यायवाची विभिन्न शब्दो की निर्युक्तियाँ भी उसमे इसी दृष्टिकोण के आधार पर की गयी हैं। किन्तु हमे इस सन्दर्भ मे ग्रन्थकार के दृष्टिकोण का सम्यक् मूल्याकन करने की आवश्यकता है।

वस्तुत. श्रमण परम्परा वैराग्य या निवृत्ति प्रधान है। उसका मूलभूत प्रयोजन व्यक्ति को सासारिक जीवन से विमुख करके सन्यास की दिशा मे प्रवृत्त करना है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि शरीर के पश्चात् मनुष्य की आसक्ति का मूलकेन्द्र स्त्री ही होती है। अतः जिस प्रकार ग्रन्थ मे शारीरिक विकृतियो को उभार कर प्रस्तुत किया गया, उसी प्रकार इसमे नारी चरित्र की विकृतियो को भी उभार कर प्रस्तुत किया गया ताकि व्यक्ति का उनके प्रति जो रागभाव या आसक्ति है वह टूटे। नारी निन्दा के पीछे मूलभूत दृष्टि मनुष्य की कामासक्ति को समाप्त करना है। वहाँ नारी-निन्दा, निन्दा के लिए नही है, अपितु पुरुष मे वैराग्य के जागरण के लिए है। जैन लेखको ने अनेक स्थलो पर इस तथ्य को स्वीकार किया है कि जिस प्रकार स्त्री पुरुष को अपने मोह पाश मे फँसाकर उसकी दुर्गति करती है, उसी प्रकार पुरुष भी नारी को अपनी वासनापूर्ति का माध्यम बनाकर उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। वस्तुत. श्रमण परम्परा मे नारी-निन्दा को उभर कर सामने आने का मुख्य कारण भारत की पुरुष प्रधान सस्कृति ही है। चूँकि पुरुष प्रधान संस्कृति मे समस्त उपदेश पुरुष को ही सामने रखकर दिये जाते हैं, अतः यह स्वाभाविक था कि उसमे नारी-निन्दा को उभार कर सामने लाया गया। सूत्रकृताग एव तदुल-वैचारिक के अतिरिक्त अन्य प्राचीन आगम ग्रन्थो मे भी हमे नारी-निन्दा के उल्लेख प्राप्त होते हैं, विशेष रूप से उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित मे। ऋषिभाषित के गर्दभालीय अध्ययन मे धर्म को पुरुष प्रधान कहा गया है। उसमे तो यहाँ तक कहा गया है कि वे ग्राम और नगर धिक्कार के योग्य हैं जहाँ नारी शासन करती है। वे पुरुष भी धिक्कार के पात्र हैं जो

नारी से शासित होते है (२२/१) किन्तु यह सब स्पष्ट रूप से पुरुष प्रधान सस्कृति का ही परिणाम है। हमे ऐसा नही लगता कि तदुलवैचारिक स्त्री को नीचा दिखाने के लिए ही नारी-निन्दा कर रहा है। वस्तुतः उसने तो मनुष्य को अध्यात्म और वैराग्य की दिशा मे प्रेरित करने के लिए ही यह समग्र विवेचन किया है। यदि हम इसी दृष्टि से ग्रन्थ व ग्रन्थकार के सन्दर्भ मे मूल्याकन करेगे तो ही सत्य के अधिक निकट होगे। वैसे जैन परम्परा मे नारी की क्या भूमिका है और उसका कितना महत्त्व है, इसकी चर्चा हमने अपने लेख 'जैनधर्म मे नारी की भूमिका' (श्रमण-अक्टुम्बर-दिसम्बर १९९०) मे की है। इस सन्दर्भ मे पाठको से उसे वहाँ देख लेने की अनुशसा करते है। अतः तदुलवैचारिक के कर्ता पर मानव जीवन, मानव-शरीर और नारी जीवन के विकृत पक्ष को उभारने का आक्षेप लगाने के पूर्व हमे इस तथ्य को समझ लेना होगा कि ग्रन्थकार का मूल प्रयोजन शरीर निन्दा या नारी-निन्दा नही है अपितु व्यक्ति की देहासक्ति और भोगासक्ति को समाप्त कर उसे आध्यात्मिक और नैतिक विकास की प्रेरणा देना है।

सागरमल जैन
सुभाष कोठारी

उदयपुर
२ मार्च १९९१

तंदुलवेयालियपइण्णयं

(तंदुलवैचारिक-प्रकीर्णक)

तंदुलवेयालियपइण्णयं

(मंगलमभिधेयं च)

निज्जरियजरा-मरणं वंदित्ता जिणवरं महावीरं।
वोच्छं पइन्नगमिण तदुलवेयालियं नाम ॥ १ ॥

(दाराणि)

सुणह गणिए दस दसा वाससयाउस्स जह विभज्जति।
सकलिऐ[1] वोगसिए ज चाऽऽउं सेसय होइ ॥ २ ॥

जत्तियमेत्ते दिवसे जत्तिय राई मुहुत्त ऊसासे।
गब्भम्मि वसइ जीवो आहारविहिं च वोच्छामि ॥ ३ ॥दारगाथा॥

(गब्भवासकालपमाणं)

दोन्नि अहोरत्तसए सपुण्णे सत्तसत्तरिं चेव।
गब्भम्मि[2] वसइ जीवो, अद्धमहोरत्तमन्नं च ॥ ४ ॥

एए उ अहोरत्ता नियमा जीवस्स गब्भवासम्मि।
हीणाऽहिया उ एत्तो उवघायवसेण जायंति ॥ ५ ॥

अट्ठ सहस्सा तिन्नि उ सया मुहुत्ताण पण्णवीसा य।
गब्भगओ वसइ जिओ नियमा, हीणाऽहिया एत्तो ॥ ६ ॥

तिन्नेव य कोडीओ [3]चउदस य हवंति सयसहस्साइं।
दस चेव सहस्साइं दोन्नि सया पन्नवीसा य ॥ ७ ॥

उस्सासा निस्सासा एत्तियमित्ता हवंति संकलिया।
जीवस्स गब्भवासे नियमा, हीणाऽहिया एत्तो ॥ ८ ॥

---

१. °ए वाससए ज चाऊ से° जे० सा० ॥ २ गब्भगओ वसइ जिओ, अद्ध° सं० ॥ ३. चोद्दस स० पु० ॥

तंदुलवैचारिक-प्रकीर्णक

(मंगलवाच्य)

(१) जिनके बुढापा व मृत्यु समाप्त हो गये है (ऐसे) जिनेश्वर महावीर को प्रणाम करके (मैं) इस तंदुलवैचारिक (नामक) प्रकीर्णक को कहूँगा।

(द्वार)

(२) गणित मे (मनुष्य की) सौ वर्ष की आयु को दस दशको मे विभाजित किया जाता है, उस सौ वर्ष की आयु के अतिरिक्त जो आयु शेष रहती है, उस आयु अर्थात् गर्भवास काल को सुनो।

(३) जितने दिन, रात्रि, मुहूर्त्त और उच्छ्वास जीव गर्भवास में रहता है, (मैं) उसे एव उस (गर्भ) की आहार विधि को कहूँगा।

(गर्भवास काल प्रमाण)

(४) जीव दो सौ सत्तहत्तर सम्पूर्ण दिन-रात्रि और एक आधा दिन गर्भ मे रहता है।

(५) नियमत ये दिन और रात जीव को गर्भवास मे (लगते ही हैं), परन्तु उपघात (वात्त-पित्त दोप) के कारण इससे कम या अधिक दिनो मे भी (जीव) जन्म ले सकते हैं।

(६) नियमत जीव आठ हजार तीन सौ पच्चीस मुहूर्त्त तक गर्भ मे रहता है, किन्तु (विशेष अवस्था मे) इसमे हानि-वृद्धि भी होती है।

(७-८) नियमत (गर्भस्थ) जीव के तीन करोड चौदह लाख दस हजार दो सौ पच्चीस (३१४१०२२५) उच्छ्वास निश्वास होते हैं, (किन्तु) इसमे कम या अधिक भी हो सकते हैं।

(गब्भुप्पत्तिजोग्गाए थीजोणीए सरूवं)

आउसो !—इत्थीए नाभिहेट्ठा सिरादुग पुप्फनालियागारं ।
तस्स य हेट्ठा जोणी अहोमुहा सठिया कोसा[1] ॥ ९ ॥

तस्स य हिट्ठा चूयस्स मजरी तारिसा उ मसस्स ।
ते रिउकाले फुडिया सोणियलवया विमुचति ॥ १० ॥

कोसायार [2]जोणी सपत्ता सुक्कमीसिया जइया ।
तइया जीवुववाए जोग्गा भणिया जिणिदेहिं ॥ ११ ॥

बारस चेव मुहुत्ता उवरिं विद्धंस गच्छई सा उ ।
जीवाण परिसखा लक्खपुहत्तं[3] च उक्कोसा ॥ १२ ॥

(थीजोणीए पुरिसबीअस्स य पमिलाणकालो)

पणपण्णाय परेण जोणी पमिलायए महिलियाण ।
पणसत्तरीय परओ पाएण पुम भवेऽबीओ ॥ १३ ॥

वाससयाउयमेय, परेण जा होइ पुव्वकोडीओ ।
तस्सऽद्धे अमिलाया, सव्वाउयवीसभागो उ ॥ १४ ॥

(पिउसंखा उक्कोसो गब्भवासकालो य)

रत्तुक्कडा य इत्थी, [3]लक्खपुहत्त च बारस मुहुत्ता ।
पिउसख [3]सयपुहत्त, बारस वासा उ गब्भस्स ॥ १५ ॥

---

१. खड्गविधानकाकारेत्यर्थ ॥ २. जोंणि सपत्ता सुक्कमिस्सिया स० ॥
३. °पुहुत्त जे० ॥

(गर्भ-धारण के योग्य स्त्री-योनि का स्वरूप)

(९) हे आयुष्मान ! स्त्री की नाभि के नीचे पुष्प-डठल के आकार वाले दो सिरे होते हैं। उसके नीचे उलटे किये हुए कमल के आकार वाली योनि स्थित होती है, जो तलवार के म्यान की तरह होती है।

(१०) उस योनि के नीचे आम की मजरी जैसा मास का पिण्ड होता है, वह ऋतुकाल मे फूटकर खून के कण छोड़ता है।

(११) उलटे किये हुए कमल के आकार वाली वह योनि जब शुक्र-मिश्रित होती है, तब वह जीव उत्पन्न करने योग्य होती है, ऐसा जिनेन्द्रो के द्वारा कहा गया है।

(१२) गर्भ उत्पति के योग्य योनि मे बारह मुहूर्त्त तक तो लाखो से अधिक जीव रहते हैं (किन्तु) उसके पश्चात् वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं।

(स्त्री योनि और पुरुष वीर्य की उत्पादक शक्ति समाप्त होने का काल)

(१३) ५५ वर्ष बाद स्त्री योनि गर्भ धारण करने योग्य नही रहती है और ७५ वर्ष बाद पुरुष प्राय. शुक्राणु रहित हो जाता है।

(१४) सौ वर्ष से पूर्व कोटी तक की जितनी आयु होती है उसके आधे भाग के बाद स्त्री सन्तानोत्पति मे असमर्थ हो जाती है और उस आयु का बीस प्रतिशत भाग रहने पर पुरुष शुक्राणु रहित हो जाता है।

(पितृ संख्या और उत्कृष्ट गर्भवास काल)

(१५) रक्तोत्कट स्त्री यानि डिम्ब युक्त स्त्री योनि बारह मुहूर्त्त मे अधिकतम लक्ष-पृथकत्त्व (दो लाख से नौ लाख तक) जीवो को सन्तान रूप मे उत्पन्न करने मे समर्थ होती है। बारह वर्ष के अधिकतम गर्भकाल मे एक जीव के अधिकतम नौ सौ पिता हो सकते हैं।[1]

---

१. गर्भकाल मे गर्भस्थ जीव जिन-जिन पुरूपो के वीर्य मिश्रित डिम्ब का अपनी शरीर रचना में उपयोग करता है, वे सभी पिता कहे जाते हैं।

(गब्भगयजीवस्स पुरिसाइजाइपरिण्णा)

दाहिणकुच्छी पुरिसस्स होइ, वामा उ इत्थियाए उ ।
उभयतर नपुसे, तिरिए अट्ठेव वरिसाइ ॥ १६ ॥

(गब्भुप्पत्ती गब्भगयजीववियासकमो य)

इमो खलु जीवो अम्मा-पिउसजोगे माऊओयं पिउसुक्क त तदुभय-संसट्ठ कलुसं किब्बिस तप्पढमयाए आहार आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ ॥१७॥

सत्ताह कलल होइ, सत्ताह होइ अब्बुय ।
अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ वि घण भवे ॥१८॥

तो पढमे मासे करिसूण पल जायइ १ । बीए मासे पेसी सजायए घणा २ । तईए मासे माऊए डोहल जणइ ३ । चउत्थे मासे माऊए अगाइ पीणेइ ४ । पंचमे मासे पच पिंडियाओ पाणिं पाय सिर चेव निव्वत्तेइ ५ । छट्ठे मासे पित्तसोणिय उवचिणेइ ।–[१] अंगोवग च निव्वत्तेइ –। ६ । सत्तमे मासे सत्त सिरासयाइ पच-पेसीसयाइ नव धमणीओ नवनउय च रोमकूवसय-सहस्साइं ९९०००० निव्वत्तेइ विणा केस-मसुणा, सह केस-मसुणा अद्धुट्ठाओ रोमकूवकोडीओ निव्वत्तेइ ३५००००००, ७ । अट्ठमे मासे वित्तीकप्पो हवइ ८ ॥१९॥

(गब्भगयस्स जीवस्स आहारपरिणामो)

जीवस्स ण भते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा पासवणे इ वा खेले इ वा सिंघाणे इ वा वते इ वा पित्ते इ वा सुक्के इ वा सोणिए इ

---

१. ।– –। एतच्चिह्नान्तर्गत पाठ स० प्रतावेव वर्त्तते । एतत्प्रकीर्णकवृत्तिकृता एष पाठो व्याख्यातो नास्ति ।

(गर्भगत जीव की पुरुष स्त्री आदि परिज्ञा)

(१६) दक्षिण कुक्षि पुरुष का और वाम कुक्षि स्त्री का (निवास स्थल) होती है, जो दोनों के मध्य निवास करता है, वह नपुसक जीव होता है। तिर्यञ्च योनि मे (गर्भ की स्थिति उत्कृष्ट) आठ वर्ष मानी गयी है।

(गर्भ उत्पत्ति और गर्भगत जीव का विकासक्रम)

(१७) निश्चय ही यह जीव माता पिता का सयोग होने पर गर्भ मे उत्पन्न होता है। वह सर्वप्रथम माता के रज और पिता के शुक्र का कलुष और किल्विष आहार करके गर्भ मे स्थित होता है।

(१८) (प्रथम) सप्ताह मे (गर्भस्थ जीव) कलल (गाढे तरल पदार्थ के रूप मे), (दूसरे) सप्ताह मे वह अर्बुद अर्थात् जमे हुए दही के समान होता है। उसके बाद लचीली मासपेशी के समान होता है, उसके पश्चात् वह ठोस होता जाता है।

(१९) तत्पश्चात् पहले महिने मे वह फूले हुए मास की तरह होता है। दूसरे महीने मे वह मासपिण्ड (पेशी) घनीभूत होता है। (अपने प्रभाव से) तीसरे महिने मे माता को दोहद उत्पन्न कराता है। चौथे महिने मे माता के (स्तन कटिभाग आदि) अगो को पुष्ट करता है। पाँचवें महिने मे (दो) हाथ (दो) पैर और एक सिर—ये पाँच अग निर्मित होते हैं। छठे महिने मे पित्त एव रक्त (शोणित) का निर्माण होता है और अन्य अग उपाग बनते हैं। सातवें महिने मे सात सौ शिरायें (नसें), पाँच सौ मासपेशियाँ, नौ धमनियाँ और सिर और दाढी के बालो के बिना निन्यानवें लाख रोमछिद्र निर्मित होते हैं। और सिर और दाढी के बालो सहित साढे तीन करोड रोम कूप उत्पन्न होते हैं। आठवें महिने मे प्रायः पूर्णता को प्राप्त होता है।

(गर्भगत जीव का आहार परिणमन)

(२०) हे भगवन्! क्या गर्भस्थ (जीव) के मल, मूत्र, कफ, श्लेष्म, वमन, पित्त, वीर्य अथवा शोणित (होता है)? यह अर्थ उचित नही है अर्थात् ऐसा नही होता है।[1] भगवन्! किस कारण से (आप) ऐसा कहते हैं कि

---

१ यद्यपि गर्भस्थ जीव में शोणित होता है किन्तु उसे वह निर्मित नही करता, इसलिए ऐसा कहा गया है कि उसके शोणित आदि नही होते हैं।

वा ? नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—जीवस्स ण गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा ? गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारमाहारेइ त चिणाइ सोइंदियत्ताए [1]चक्खुइंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए जिब्भिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से एएण अट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चइ—जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारे इ वा जाव सोणिए इ वा ॥२०॥

[गब्भगयस्स जीवस्स आहारविही]

जीवे ण भंते ! गब्भगए समाणे पहू मुहेणं कावलिय आहार आहारित्तए[2] ? गोयमा ! नो [3]इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ? गोयमा ! जीवे ण गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ ऊससइ, सव्वओ नीससइ; अभिक्खण आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खणं ऊससइ, अभिक्खणं नीससइ; आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च ऊससइ, आहच्च नीससइ; से माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा [4]पुत्तजीवफुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ, अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ तम्हा उवचिणाइ, [5]से एएणं अट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—जीवे ण गब्भगए समाणे नो पहू मुहेण कावलिय आहारं आहारेत्तए ॥२१॥

---

१ °क्खुरिंदि° स० ॥ २ °ए ? नो इणट्ठे समट्ठे गो० ! से स० हं० ॥ ३. इणमट्ठे म° पु० ह० ॥ ४. पुत्तजीवफुडा म० ह० ॥ ५ सेतेणऽट्ठेण जाव नो पभू भगवत्या पाठ. ॥

गर्भस्थ जीव के मल यावत् खून नही होता है ? गौतम ! गर्भस्थ जीव (माता के शरीर से) जो आहार करता है, उसको श्रोतेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय के रूप मे हड्डी, मज्जा, केश, दाढी-मूंछ, रोम और नखो के रूप मे उपचित करता है। हे गौतम ! इस कारण यह कहा जाता है कि गर्भस्थ जीव को मल यावत् खून नही होता है।

(गर्भस्थ जीव को आहार विधि)

(२१) हे भगवन् ! गर्भस्थ समर्थ जीव मुख के द्वारा कवल-आहार करने मे समर्थ है ? हे गौतम ! यह अर्थ योग्य नहीं है। भगवन् ! किस कारण से (आप) ऐसा कहते हैं कि गर्भस्थ जीव मुख के द्वारा कवल-आहार करने मे (सक्षम) नही है ? हे गौतम ! गर्भस्थ जीव सभी ओर से आहार करता है, सभी ओर से 'परिणमित करता है, सभी ओर से श्वास लेता है और छोडता है। निरन्तर आहार करता है और निरन्तर (उसे) परिणमित करता है, निरन्तर श्वास लेता है और छोड़ता है।

(वह गर्भस्थ जीव) जल्दी-जल्दी आहार करता है और जल्दी-जल्दी ही उसे परिणमित करता है, (वह) जल्दी-जल्दी श्वास लेता है और श्वास छोडता है। माता के शरीर से प्रतिबद्ध पुत्र के शरीर को स्पर्शित करने वाली माता के शरीर रस की ग्राहक और पुत्र के जीवन रस की सग्राहक (एक नाडी होती है जिसके कारण गर्भस्थ जीव) जैसा आहार ग्रहण करता है वैसा ही उसे परिणमित करता है। पुनः पुत्र के शरीर से प्रतिबद्ध हो माता के शरीर को स्पर्श करने वाली एक अन्य नाडी होती हे उससे जैसा चय होता है वैसा ही उपचय होता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि समर्थ गर्भस्थ जीव कवल-आहार को मुख द्वारा ग्रहण नही करता है।[1]

---

(१) गर्भस्थ अवस्था में माता के शरीर से पुत्र के शरीर को जोडने वाली जो नाडियाँ होती हैं उनके माध्यम से ही गर्भस्थ जीव माता के द्वारा परिणमित और उपचित आहार को ग्रहण करता है और निस्सरित करता है इसलिए यह कहा जाता है कि गर्भस्थ जीव न तो मुख से आहार करने में सक्षम है और न उसके अपने मल, मूत्र, पित्त, कफ आदि होते हैं।

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे किमाहारं आहारेइ ?, गोयमा ! जं से माया नाणाविहाओ रसविगईओ[1] तित्त-कडुय-कसायंबिल-महुराइं दव्वाइं आहारेइ तओ एगदेसेण ओयमाहारेइ ।।२२।।

[गब्भत्थस्स जीवस्स आहारो]

तस्स फलबिंटसरिसा उप्पलनालोवमा भवइ नाभी ।
रसहरणी जणणीए सयाइ नाभीए पडिबद्धा ।।२३।।
नाभीए ताओ गब्भो ओयं आइयइ अण्हयंतीए ।
ओयाए तीए गब्भो विवड्ढई जाव जाओ त्ति ।।२४।।

[गब्भुप्पन्नजीवं पडुच्च माउ-पिउअंगनिरूवणं]

कइ णं भंते ! माउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ माउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—मंसे १ सोणिए २ मत्थुलुंगे[2] ३ । कइ णं भंते ! [3]पिउअंगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ [4]पिउअंगा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठि १ अट्ठिमिंजा २ केस-मंसु-रोम-नहा ३ ।।२५।।

[गब्भगयस्स जीवस्स णरएसु उप्पत्ती]

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे [5]नरएसु उववज्जिज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवे णं गब्भगए समाणे [6]नरएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ? गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए[7] वेउव्विअलद्धीए वेउव्वियलद्धिपत्ते पराणीअं आगयं सोच्चा निसम्म पएसे निच्छुहइ, २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, २ त्ता चाउरंगिणिं सेन्नं[8] सन्नाहेइ, सन्नाहित्ता पराणीएण सद्धिं संगामं संगामेइ, से णं जीवे अत्थकामए रज्जकामए भोगकामए कामकामए, अत्थकंखिए रज्जकंखिए भोगकंखिए कामकंखिए, अत्थपिवासिए रज्जपिवासिए भोगपिवासिए कामपिवासिए तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए, एयंसि च णं अंतरंसि कालं करेज्जा नेरइएसु [9]उववज्जेज्जा, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ।।२६।।

---

१. °गईओ आहारमाहारेइ भगवत्या पाठः ।। २ °त्थुलिंगे स० । °त्थुलंगे पु०।। ३-४ पिइअंगा स० ।। ५-६. नेरइएसु स० भग० ।। ७ °लद्धीए वेउव्वि-णिड्ढिपत्ते परा° स० । °लद्धीए वेउव्वियलद्धिपत्ते परा° भग० ।। ८. सेन्नं विउव्वइ, चातुरंगिणी सेन्नं विउव्वेत्ता चाउरंगिणीए सेणाए परा° भगवतीसूत्रे ।। ९ उववज्जइ, से भग० ।।

(२२) हे भगवन्! गर्भ मे रहा हुआ जीव क्या आहार करता है? हे गौतम! उसकी माता, जो नाना प्रकार की रसविकृतियो-तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल, मधुर द्रव्यो का आहार करती है, उसका ही आंशिक रूप से ओज आहार करता है।

(गर्भ में स्थित जीव का आहार)

(२३) उस गर्भस्थ जीव की फलो के डण्ठल के समान, कमलनाल के आकार वाली नाभि होती है, वह रस ग्राहक नाडी से माता की नाभि से जुडी हुई होती है।

(२४) उस नाभि से गर्भ ओज आहार करता है और उसी ओज आहार को ग्रहणकर गर्भ वृद्धि को प्राप्त करता है, यावत् उत्पन्न होता है।

(गर्भस्थ जीव के माता पिता के अंग निरूपण)

(२५) हे भगवन्! (गर्भ के) मातृ-अंग कितने होते हैं?
हे गौतम! माता के तीन अग कहे गये हैं। वे इस प्रकार है—१ मास २ रक्त, ३ मस्तक का स्नेह। हे भगवन्! पिता के कितने अग कहे गये हैं? हे गौतम! पिता के तीन अग कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—
१ हड्डी २ मज्जा ३ केश, दाढी, मूंछ, रोम एव नख।

(२६) हे भगवन्! क्या गर्भ मे रहा हुआ जीव (गर्भकाल मे ही मरकर) नरक मे उत्पन्न होता है? हे गौतम! कोई उत्पन्न होता है, कोई उत्पन्न नही होता है। हे भगवन्! आप यह किस कारण से कहते है कि गर्भ मे विद्यमान कोई जीव नरक मे उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नही होता है?

हे गौतम! गर्भ मे रहा हुआ सज्ञी पचेन्द्रिय और सब पर्याप्तियो से पर्याप्त जीव वीर्यलब्धि, विभगज्ञानलब्धि वैक्रियलब्धि द्वारा शत्रु सेना को आया हुआ सुनकरके विचार करके अपने आत्म प्रदेशो को निकालता है, उन्हे बाहर निकाल करके वैक्रिय समुद्घात करता है, वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना की सरचना करता है, सेना की सरचना करके उससे शत्रु सेना के साथ युद्ध करता है। वह अर्थ का कामी, राज्य का कामी, भोग का कामी काम का कामी, अर्थाकाक्षी, राज्याकाक्षी, भोगाकाक्षी, कामाकाक्षी, अर्थ का प्यासा, राज्य का प्यासा, भोग का प्यासा, काम का प्यासा, उन्ही चित्त वाला, उन्ही के मन वाला, उन्ही की लेश्या वाला, उन्ही

(गब्भगयस्स जीवस्स देवलोएसु उप्पत्ती)

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोएसु उववज्जेज्जा ? गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ? गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वेउव्वियलद्धीए वीरियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए [1]एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म, तओ से भवइ तिव्वसंवेगसंजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरायरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए[2], धम्मकंखिए पुन्नकंखिए सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए, धम्मपिवासिए पुन्नपिवासिए सग्गपिवासिए मोक्खपिवासिए, तच्चित्ते तम्मणे[3] तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदप्पियकरणे तदट्ठोवउत्ते तब्भावणाभाविए, एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्जा देवलोएसु उववज्जेज्जा, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ॥२७॥

(गब्भगयस्स जीवस्स माउसमसहावया)

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुज्जए वा अच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा निसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा आसएज्ज वा सएज्ज वा माऊए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहिआए सुहिओ भवइ दुहिआए दुहिओ भवइ ? हंता गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे उत्ताणए वा जाव दुक्खिआए दुक्खिओ भवइ ॥२८॥

---

१ °मवि याऽऽरिय स० ॥ २. °ए एव धम्म° न० ॥ ३ तम्मणे जाव तब्भावणा° स० ॥

के अध्यवसाय वाला, उन्ही मे तत्पर, उन्ही के लिए क्रिया करने वाला, उन्ही भावनाओ से भावित, समय के इसी अन्तराल मे काल (मृत्यु) को प्राप्त हो जाय (तो) नरक मे उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! इस प्रकार कहा जाता है—गर्भ मे विद्यमान कोई जीव नरक मे उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नही होता है।

(गर्भस्थ जीव की देवलोको में उत्पत्ति)

(२७) हे भगवन् ! गर्भ में स्थित जीव क्या देवलोको मे उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! कोई जीव (देवलोक मे) उत्पन्न होता है कोई उत्पन्न नही होता है। हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि कोई (जीव) उत्पन्न होता है (और) कोई (जीव) उत्पन्न नही होता है ? हे गौतम ! गर्भ मे स्थित सज्ञी पचेन्द्रिय एव सब पर्याप्तियो से युक्त जीव वैक्रियलब्धि, वीर्यलब्धि, अवधिज्ञान-लब्धि के द्वारा तथा-रूप श्रमण या ब्राह्मण के पास मे एक भी आर्य एव धार्मिक सुवचन सुनकर, धारण करके शीघ्र ही सवेग से उत्पन्न तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त होता है। वह धर्म का कामी, पुण्य का कामी, स्वर्ग का कामी, मोक्ष का कामी, धर्म का आकाक्षी, पुण्य का आकाक्षी, स्वर्ग का आकाक्षी, मोक्ष का आकाक्षी, धर्म का पिपासु, पुण्य का पिपासु, स्वर्ग का पिपासु व मोक्ष का पिपासु, उसी मे चित्तवाला, उसी के अनुसार मन वाला, उसी के अनुसार लेश्या वाला, उसी के अनुसार अध्यवसाय वाला, उसी मे प्रयत्नशील, उसी मे तत्पर, उसी के प्रति सर्मपित होकर क्रिया करने वाला, उसी भावना से भावित अगर उसी समय मे मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो देवलोक मे उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम ! इस प्रकार कहा जाता है कि कोई (जीव देवलोक मे) उत्पन्न होता है, कोई जीव उत्पन्न नही होता है।

(गर्भस्थ जीव का माता के समान स्वभाव)

(२८) हे भगवन् ! क्या गर्भ मे स्थित जीव सीधा लेटता है या पार्श्वशायी होता है, या वक्राकार होकर लेटता है या खडा होता है या बैठता है, सोता है, जागता है अथवा माता के सोने पर सोता है या माता के जागने पर जागता है, माता के सुखी होने पर सुखी होता है एवं दुःखी होने पर दु खी होता है ?

हे गौतम ! गर्भ मे स्थित जीव सीधा लेटता है यावत् दु खी होने पर दु.खी होता है।

[1]थिरजाय पि हु रक्खइ, सम्म सारक्खई तओ जणणी।
सवाहई तुयट्टइ रक्खइ अप्प च गब्भ च ॥ २९ ॥

अणुसुयइ सुयतीए, जागरमाणीए जागरइ गब्भो।
सुहियाए होइ [2]सुहिओ, दुहियाए दुक्खिओ होइ ॥ ३० ॥

उच्चारे पासवणे खेले सिंघाणए वि से नत्थि।
अट्ठट्ठीमिज-नह-केस-मसु-रोमेसु परिणामो ॥ ३१ ॥

आहारो परिणामो उस्सासो तह य चेव नीसासो।
सव्वपएसेसु भवइ, कवलाहारो य से नत्थि ॥ ३२ ॥

एवं बोदिमइगओ गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो।
[3]परमतिमिसधयारे अमेज्झभरिए [4]पएसम्मि ॥ ३३ ॥

(पुरिसित्थि-नपुंसगाईणं उप्पत्ती)

आउसो! तओ नवमे मासे तीए वा पडुप्पन्ने वा अणागए वा चउण्हं माया अन्नयरं पयायइ। तं जहा—इत्थि वा इत्थिरूवेणं १ पुरिसं वा पुरिसरूवेण २ नपुसग वा नपुसगरूवेणं ३ बिंब वा बिंबरूवेण ४ ॥ ३४ ॥

अप्पं सुक्क बहु ओयं [5]इत्थीया तत्थ जायई।
अप्पं ओय बहु सुक्क पुरिसो तत्थ जायई ॥ ३५ ॥

दोण्ह पि रत्त-सुक्काण [6]तुल्लभावे नपुसगो।
इत्थीओयसमाओगे बिंबं तत्थ पजायइ ॥ ३६ ॥

---

१. चिरजाय पि हु गब्भ सम्मं स० ॥ २. सुही, दुहि° सं० ॥ ३. °मतमसंध° जे० ॥ ४. पइभयम्मि सं० ॥ ५. °त्थी तत्थ पजायई सं० ॥ ६. तुल्लयाए नपु° सं० ॥

(२९) स्थिर रहे हुए गर्भ का माता रक्षण करती है, सम्यक्‌रूप से परिपालन करती है (तत्पश्चात्) उसका वहन करती है, उसे सीधा रखती है और इस प्रकार गर्भ की तथा अपनी रक्षा करती है।

(३०) गर्भस्थ जीव (माता के) सोने पर सोता है, जागने पर जागता है, सुखी होने पर सुखी होता है (और) दुःखी होने पर दु खी होता है।

(३१) उसे विष्ठा, मूत्र, कफ, नासिका मल भी नही होते हैं और आहार अस्थि, अस्थिमज्जा, नख, केश, दाढी-मूंछ के रोमो (के रूप) मे परिणमित (हो जाता है)।

(३२) (गर्भस्थ जीव का) आहार-परिणमन एव उच्छ्‌वास और नि श्वास सभी (शरीर) प्रदेशो से होता है (और) वह कवलाहार नही (करता है)।

(३३) इस प्रकार दु खी जीव गर्भ मे शरीर को प्राप्त कर अशुचि से भरे हुए सर्वाधिक अधकार से युक्त प्रदेश मे निवास करता है।

(पुरुष, स्त्री, नपुंसक आदि की उत्पत्ति)

(३४) हे आयुष्मन् ! तब नौवें महिने मे माता उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले गर्भ को चार मे से किसी एक रूप मे जन्म देती है। वे इस प्रकार है—स्त्री को स्त्री के रूप मे, पुरुष को पुरुष के रूप मे, नपुसक को नपुसक के रूप मे और बिम्ब को बिम्ब (मास-पिण्ड) के रूप मे।

(३५) शुक्र अल्प और ओज अधिक होता है (तो) स्त्री उत्पन्न होती है (और जब) ओज कम और शुक्र अधिक होता है (तो) पुरुष उत्पन्न होता है।

(३६) जब ओज और शुक्र दोनो की मात्रा समान होती है तो नपुसक उत्पन्न होता है (शुक्र के अभाव मे) मात्र स्त्री के ओज की स्थिरता होने पर विम्ब उत्पन्न होता है।

(गब्भस्स निक्खमणं)

अह णं पसवणकालसमयम्मि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ [1]सम-मागच्छइ तिरियमागच्छइ विणिघायमावज्जइ ॥३७॥

(उक्कोसो गब्भवासकालो)

कोइ पुण पावकारी बारस संवच्छराइं उक्कोसं ।
अच्छइ उ गब्भवासे असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥३८॥

(गब्भवासस्स सरूवं विरूवया य)

जायमाणस्स जं दुक्खं मरमाणस्स वा पुणो ।
तेण दुक्खेण सम्मूढो जाइं[2] सरइ नऽप्पणो ॥३९॥
विस्सरसर[3] रसंतो तो सो जोणीमुहाउ निप्फिडइ ।
माऊए अप्पणो वि य वेयणमउलं जणेमाणो ॥४०॥
गब्भघरयम्मि जीवो कुंभीपागम्मि नरयसंकासे ।
[4]वुच्छो अमेज्झमज्झे असुइप्पभवे असुइयम्मि ॥४१॥
पित्तस्स य सिंभस्स य सुक्कस्स य सोणियस्स वि य मज्झे ।
मुत्तस्स पुरीसस्स य जायइ[5] जह वच्चकिमिउ व्व ॥४२॥
तं दाणि 'सोयकरणं केरिसगं होइ तस्स जीवस्स ? ।
सुक्क-रुहिरागराओ जस्सुप्पत्ती सरीरस्स ॥४३॥
एयारिसे सरीरे कलमलभरिए अमेज्झसंभूए ।
नियय विगणिज्जंतं सोयमयं केरिसं तस्स ? ॥४४॥

[वाससयाउगस्स मणुयस्स दस दसाओ)

आउसो ! एवं जायस्स जंतुस्स कमेण दस दसाओ एवमाहिज्जंति । तं जहा—

बाला १ किड्डा २ मंदा ३ बला ४ य पन्ना ५ य हायणि ६ पवंचा ७ ।
पब्भारा ८ मुम्मुही ९ सायणी य १० दसमा १० य कालदसा ॥४५॥

---

१. सम्ममा° सं०, अयं पाठभेदो वृत्तिकृता उल्लिखितो व्याख्यातश्चाप्यस्ति ॥ २. जाइं न सरइ अप्पणो सं० ॥ ३. वीसरसरं सं० ॥ ४. वुत्थो अ° सं० ॥ ५. जाओ जह सं० ॥

(गर्भ का निर्गमन)

(३७) प्रसव समय मे (शिशु) सिर से अथवा पैरो से बाहर निकलता है। यदि वह सीधा बाहर निकलता है (तो सकुशल जन्म लेता है, परन्तु यदि) वह तिरछा हो जाता है तो मरण को प्राप्त होता है।

(उत्कृष्ट गर्भवासकाल)

(३८) कोई पापात्मा अशुचि प्रसूत और अशुचि रूप गर्भवास मे अधिक से अधिक बारह वर्ष तक रहता है।

(गर्भवास का स्वरूप और विविध रूप)

(३९) जन्म के समय और मृत्यु के समय (जीव) जिस दुख को प्राप्त करता है उस दुःख से विमूढ बना हुआ (वह जन्म के समय) अपने पूर्वजन्मो का स्मरण नही कर पाता है।

(४०) तब क्रन्दन करता हुआ तथा अपनी माता के शरीर को पीड़ा उत्पन्न करता हुआ वह योनि-मुख से बाहर निकलता है।

(४१) गर्भगृह मे जीव कुभीपाक नरक के समान विष्ठा, मल, मूत्र आदि अशुचि से प्रभूत अशुचि स्थान मे उत्पन्न होता है।

(४२) जिस प्रकार विष्ठा मे कृमि (समूह) उत्पन्न होता है उसी प्रकार पुरुष के पित्त, कफ, वीर्य, खून और मूत्र के बीच (जीव) उत्पन्न होता है।

(४३) उस जीव का शुद्धिकरण कैसे हो सकता है जिसकी उत्पत्ति ही शुक्र रूधिर के समूह से हुई हो ?

(४४) अशुचि से उत्पन्न एव हमेशा दुर्गन्धयुक्त विष्ठा से भरे हुए एव सदैव शुचि की अपेक्षा करने वाले इस शरीर पर गर्व कैसा ?

(सौ वर्ष की आयु के मनुष्य की दस दशाएँ)

(४५) हे आयुष्मन् ! इस प्रकार उत्पन्न जीव की क्रम से दस दशाएँ कही गयी हैं, वे इस प्रकार हैं—१ बाला २ क्रीडा ३ मदा ४. बला ५ प्रज्ञा ६ हायनी ७ प्रपञ्चा ८. प्रग्भारा ९ मुन्मुखी एव १०. शायनी। (ये) जीवनकाल की दस अवस्थाएँ कही गयी हैं।

[1]जायमित्तस्स जतुस्स जा सा पढमिया दसा।
न तत्थ [2]सुक्ख दुक्ख वा छुह जाणति वालया १ ॥४६॥
बीय च दस पत्तो नाणाकीडाहिं कीडई।
न य से कामभोगेसु तिव्वा उप्पज्जए मई २ ॥४७॥
तइयं च दस पत्तो पंच कामगुणे नरो।
समत्थो भुजिउ भोगे जइ से अत्थि घरे घुवा ३ ॥४८॥
चउत्थी उ बला नाम ज नरो दसमस्सिओ।
समत्थो बल दरिसेउ जइ सो भवे निरुवद्दवो ४ ॥४९॥
पंचमी उ दसं पत्तो आणुपुव्वीइ[3] जो नरो।
समत्थो अत्थ विचिंतेउ कुडुब चाभिगच्छई ५ ॥५०॥
छट्ठी उ हायणी नाम ज नरो दसमस्सिओ।
विरज्जइ[4] काम-भोगेसु, इदिएसु य हायई ६ ॥५१॥
सत्तमी य पवचा उ ज नरो दसमस्सिओ।
निट्ठुभइ चिक्कण खेल खासई य खणे खणे ७ ॥५२॥
सकुइयवलीचम्मो सपत्तो अट्ठमिं दस।
नारीण च अणिट्ठो उ जराए परिणामिओ ८ ॥५३॥
नवमी मुम्मुही नाम ज नरो दसमस्सिओ।
जराघरे विणस्सते जीवो वसइ अकामओ ९ ॥५४॥
हीण-भिन्नसरो दीणो विवरीओ विचित्तओ।
दुब्बलो दुक्खिओ सुयइ[5] सपत्तो दसमिं दस १० ॥५५॥

---

१. सा० आदर्शे इत आरम्य गाथात्रयमित्थरूप विकृतं मूले आदृत दृश्यते तथाहि—जायमित्तस्स जंतुस्स जा सा पढमिया दसा। न तत्थ भुजिउ भोए जइ से अत्थि घरे घुवा १ ॥ बीयाए किड्डया नामं जं नरो दसमस्सिओ। किड्डारमणभावेण दुलह गमइ नरभव २ ॥४७॥ तइया य मदया नामं, ज नरो दसमस्सिओ। मदस्स मोहभावेणं इत्थीभोगेहिं मुच्छिओ ३ ॥४८॥ मया तु प्राचीनेष्वादर्शेषु सर्वेष्वप्युपलब्धो वृत्तिकृता व्याख्यातश्च सुव्यवस्थित. पाठो मूले आदृतोऽस्ति ॥ २ सुह दुक्खं वा न हु जाणति स०। एतत्पाठभेदानुसारेणैव वृत्तिकृता व्याख्यातमस्ति, किन्च नाय पाठभेद सम्यक् समीचीनोऽस्तीति ॥ ३ °व्वीय जो स० ॥ ४ °ज्जई य कामेसुं, इंदि° सा० वृ० ॥ ५ वसइ पु० ॥

(४६) जन्म होते ही जो जीव प्रथम अवस्था को प्राप्त होता है, उसमे वह अज्ञानता के कारण सुख, दु ख और क्षुधा को नही जानता है।[1]

(४७) दूसरी अवस्था को प्राप्त वह नाना प्रकार की क्रीडाओ के द्वारा क्रीडा करता है। उसकी काम-भोगो (मैथुन-सुख) मे तीव्र मति उत्पन्न नही होती है।

(४८) जिस समय मनुष्य तीसरी अवस्था को प्राप्त होता है, (उस समय) वह पाँच प्रकार के विषय भोगो को भोगने के लिए निश्चय ही समर्थ होता है।

(४९) चौथी बला नामक अवस्था के आश्रित मनुष्य किसी बाधा के उपस्थित न होने पर अपने बल प्रदर्शन मे समर्थ होता है।

(५०) क्रम से जो मनुष्य पाँचवी अवस्था को प्राप्त होता है, (वह) धन की चिन्ता के लिए समर्थ होता है (अर्थात् धन की चिन्ता करता है) एवं परिवार को प्राप्त होता है।

(५१) छठी ह्रासमान अवस्था के आश्रित मनुष्य, इन्द्रियो मे शिथिलता आने पर, कामभोगो के प्रति विरक्त होता है।

(५२) सातवीं प्रपञ्चा नामक दशा के आश्रित मनुष्य स्निग्ध लार और कफ गिराने लगता है और बार-बार खाँसता रहता है।

(५३) सकुचित हुई पेट की चमडी वाला आठवी अवस्था को प्राप्त मनुष्य नारियो का अप्रिय हो जाता है और बुढापे मे प रेणमन (करता है)।

(५४) नवी मुन्मुख नामक दशा (है), जिस दशा के आश्रित (मनुष्य का) शरीर वृद्धावस्था से आक्रान्त हो जाता है और वह मनुष्य काम-वासना से रहित होकर रहता है।

(५५) दसवी दशा को प्राप्त व्यक्ति की वाणी क्षीण हो जाती है और स्वर भिन्न हो जाता है। वह दीन, विपरीत-बुद्धि, भ्रान्त-चित्त, दुर्बल एव दु:खद अवस्था को प्राप्त होता है।

---

१ जन्म के पश्चात् प्रथम अवस्था में सुख, दु ख आदि सवेदनाएँ तो होती हैं किन्तु यह सुख हैं, यह दु ख है, यह भूख है, ऐसा वह नही जानता है।

दसगस्स [1]उवक्खेवो, वीसइवरिसो उ गिण्हई विज्जं।
भोगा य तीसगस्सा[2], चत्तालीसस्स विन्नाणं ॥५६॥

पन्नासयस्स चक्खु हायइ, सट्ठिक्कयस्स बाहुबलं।
[3]सत्तरियस्स उ भोगा, आसीकस्साऽऽयविन्नाणं ॥५७॥

नउई नमइ सरीरं, पुन्ने वाससए जीवियं चयइ।
केत्तिओऽत्थ सुहो भागो ? दुहभागो य केत्तिओ ? ॥५८॥

(दससु दसासु सुह-दुक्खविवेगेण धम्मसाहणोवएसो)

जो वाससयं जीवइ सुही भोगे य भुंजई।
तस्सावि [4]सेविउं सेओ धम्मो य जिणदेसिओ ॥५९॥

किं पुण सपच्चवाए जो नरो निच्चदुक्खिओ ?।
सुट्ठुयरं तेण कायव्वो धम्मो य जिणदेसिओ ॥६०॥

नंदमाणो चरे धम्मं 'वरं मे लट्ठतरं भवे'।
अणंदमाणो वि चरे धम्मं 'मा मे पावतरं भवे' ॥६१॥

न वि जाई कुलं वा वि विज्जा वा वि सुसिक्खिया।
[5]तारे नरं व नारिं वा, सव्वं पुण्णेहिं वड्ढई ॥६२॥

पुण्णेहिं हायमाणेहिं पुरिसगारो वि हायई।
पुण्णेहिं वड्ढमाणेहिं पुरिसगारो वि वड्ढई ॥६३॥

---

१. अव° स० ॥ २ °गस्स य चत्तालीसस्स बलमेव सा० ॥ ३. भोगा य सत्तरिस्स उ, आसीकस्सा° पु० । भोगा य सत्तरिस्स य, असीययस्सा° सा० ॥ ४ सेविय से° स० ॥ ५ तारेइ नरं स० ॥

(५६) दस वर्ष (तक) की उम्र दैहिक विकास की, बीस वर्ष तक की उम्र विद्या को ग्रहण करने की, तीस वर्ष तक की उम्र विषय सुख भोगने की और चालीस वर्ष तक की उम्र विशिष्ट ज्ञान की होती है।

(५७) पचास वर्ष की आयु मे आँख की दृष्टि क्षीण होने लगती है, साठ वर्ष की उम्र मे बाहुवल क्षीण होने लगता है, सत्तर वर्ष की उम्र मे विपय-सुख भोगने की सामर्थ्य क्षीण होने लगती है और अस्सी वर्ष की आयु मे आत्म-चेतना भी क्षीण हो जाती है।

(५८) नव्वे वर्ष की उम्र शरीर को झुका देती है। सौ वर्ष की आयु मे जीवन समाप्त हो जाता हे (इस प्रकार) यहाँ जीवन मे कितना सुख का भाग है और कितना दु ख का भाग है (यह बतलाया गया है)।

(दस दशाओ में सुख-दुःख का विवेक और धर्म-साधना का उपदेश)

(५९) जो सौ वर्ष सुखपूर्वक जीवित रहता है (अर्थात् जीता है) और भोगो को भोगता है, उसके लिए भी जिन-भाषित धर्म का सेवन करना श्रेयस्कर है।

(६०) जो मनुष्य नित्य दु ख युक्त और कष्टपूर्ण अवस्था मे ही जीवन जीता हो, उसके लिए क्या श्रेयष्कर है ? उत्तर मे कहा गया कि उसके लिए जिनेन्द्रो द्वारा उपदेशित श्रेष्ठतर धर्म का पालन करना ही कर्त्तव्य है।

(६१) सासारिक सुख भोगता हुआ (मनुष्य यह सोचकर) धर्म का आचरण करे कि इससे मुझे भवान्तर मे श्रेष्ठ सुख प्राप्त होगा। दुःखी होता हुआ भी (मनुष्य यह सोचकर) धर्म का आचरण करे कि भवान्तर मे दु ख को प्राप्त नही होऊँगा।

(६२) नर अथवा नारी को जाति, कूल, विद्या और सुशिक्षा भी (ससार-समुद्र मे) पार नही उतारते हैं, ये सभी तो शुभ-कर्मों से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

(६३) शुभ कर्मो के क्षीण होने से पौरुप भी क्षीण हो जाता है और शुभ कर्मों के वृद्धि को प्राप्त होने पर पौरुप भी वृद्धि को प्राप्त होता है।

(अंतरायबहुले जीविए पुण्णकिच्चकरणोवएसो)

पुण्णाइं खलु आउसो ! किच्चाइं करणिज्जाइं पीइकराइं[1] वन्नकराइं धणकराइं कित्तिकराइं। नो य खलु आउसो ! एवं चिंतेयव्वं—एसिंति[2] खलु बहवे समया आवलिया खणा आणापाणू थोवा लवा मुहुत्ता दिवसा अहोरत्ता पक्खा मासा रिऊ अयणा संवच्छरा जुगा वाससया वाससहस्सा वाससयसहस्सा, वासकोडीओ वासकोडाकोडीओ, जत्थ णं अम्हे बहूइं सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं पडिवज्जिस्सामो पट्ठविस्सामो करिस्सामो, ता किमत्थं आउसो ! नो एवं चिंतेयव्वं भवइ ?—अंतराइयबहुले खलु अयं जीविए, इमे य बहवे वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका फुसंति जीवियं ॥ ६४ ॥

(जुगलिय-अरिहंत-चक्कवट्टिआईणं देहाइइड्ढीओ)

आसी य खलु आउसो ! पुव्विं मणुया ववगयरोगाऽऽयंका बहुवास-सयसहस्सजीविणो। तं जहा—जुयलधम्मिया अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणा विज्जाहरा ॥ ६५ ॥

ते णं मणुया [3]अणतिवरसोम-चारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा सुजायसव्वंगसुंदरंगा रत्तुप्पल-[4]पउमकर-चरणकोमलंगुलितला नग-णगर-मगर-सागरचक्कंकधरंकलक्खणंकियतला सुपइट्ठियकुम्मचारुचलणा अणु-पुव्विसुजाय-पीवरंगुलिया उन्नय-तणु-तंब-निद्धनहा संठिय-सुसिलिट्ठ-गूढ-गोप्फा एणी-कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्विजंघा[5] सामुग्गनिमग्गगूढजाणू गयससण-सुजायसन्निभोरू [6]वरवारणमत्ततुल्लविक्कम-विलासियगई सुजायवरतुर-यगुज्झदेसा आइन्नहउ व्व निरुवलेवा पमुइयवरतुरग-सीहअइरेगवट्टियकडी साहयसोणंद-मुसलदप्पण-निगरियवरकणगच्छरुसरिस-वरवइरवलियमज्झा

---

१. °राइं धणकराइं जसकराइं कित्ति° सं० पु०। वृत्तिकृता उपरिस्थापित एव पाठो व्याख्यातोऽस्ति ॥ २. एसति सा० ॥ ३. अत्र श्रीमता वृत्तिकृता अतिवसोम° इति अणतिवरसोम° इति च पाठद्वयं व्याख्यातमस्ति ॥ ४. °पत्तमतकर° पु० ॥ ५ °विंद-वत्तवट्टाणुपुन्नजंघा वृ० ॥ ६ मत्तपदं वृत्तौ व्याख्यातं नास्ति ॥

(अन्तराय बहुल जीवन से पुण्यकृत करुण उपदेश)

(६४) हे आयुष्मान् ! पुण्य-कृत्यो को करने से प्रीति मे वृद्धि होती है, प्रशसा होती है, धन मे वृद्धि होती है और कीर्ति मे वृद्धि होती है, (इसलिए) हे आयुष्मान् ! यह कभी नही सोचना चाहिए कि—यहाँ पर बहुत समय, आवलिका, क्षण, श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, शतवर्ष, सहस्त्रवर्ष, लाख वर्ष, करोड वर्ष (अथवा) क्रोडा-क्रोड वर्ष (जीना है), जहाँ हम बहुत से शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास स्वीकार करके स्थिर रहेगे। हे आयुष्मान् ! तब इस प्रकार का चिन्तन क्यो नही होता है कि निश्चय ही यह जीवन बहुत बाधाओ से युक्त है और इसमे बहुत से वात्त, पित्त, श्लेष्म, सन्निपात आदि विविध रोगांतक जीवन को स्पर्श करते है ?

(यौगलिक, अर्हत्, चक्रवर्ती आदि की देह ऋद्धि)

(६५) हे आयुष्मान् ! पूर्व काल मे यौगलिक, अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण और विद्याधर आदि मनुष्य रोगो से दूर होने के कारण लाखो वर्षो तक जीवन-जीने वाले होते रहे है।

(६६) वे मनुष्य अत्यन्त सौम्य, सुन्दर रूप वाले, उत्तम भोगो को भोगने वाले, उत्तम लक्षणो को धारण करने वाले, सर्वांग सुन्दर शरीर से युक्त (होते हैं)। उनके **चरणतल और करतल** लाल कमल के पत्तो की तरह लाल एव कोमल (होते हैं)। (उनकी) अगुलियाँ भी कोमल (होती है)। (उनके) **चरणतल** पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा चक्र आदि उत्तम और मगल चिह्नो से युक्त (होते हैं)। **पैर** कछुए के समान सुप्रतिष्ठित, पैर की **अंगुलियाँ** अनुक्रम को प्राप्त सघन एव छिद्र-रहित, पैर के **नाखून** उन्नत पतले एव कान्तियुक्त, **पैरो के गुल्फ** (टखने) सुश्लिष्ट एव सुस्थित, **जंघाएँ** हरिणी एव कुरुविन्द नामक तृण के समान वृत्ताकार, **घुटने** डिब्बे और उसके ढक्कन की सधि के समान, **उरू** हाथी की सूंड की तरह, **गति** श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी के समान विक्रम और विलास से युक्त, **गुह्य-प्रदेश** उत्तम जाति के श्रेष्ठ घोड़े के समान (मल से अलिप्त), **कटि-प्रदेश** सिंह की कमर से भी अधिक गोलाकार, शरीर का **मध्य भाग** समेटी हुई तिपाई, मूसल, दर्पण और शुद्ध किये गये उत्तम सोने से निर्मित खड्ग की मूठ एव वज्र के समान वलयाकार, **नाभि** गगा के आवर्त्त एव प्रदक्षिणावर्त्त

गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुण-बोहिय[1] उक्कोसायंतपउम-गभीरवियडनाभी उज्जुय-समसहिय-सुजाय-जच्च-तणु-कसिणनिद्ध-आएज्ज-लडह-सुकुमाल-मउय-रमणिज्जरोमराई झस-विहगसुजाय-पीणकुच्छी झसोयरा पम्हवियडनाभा संगयपासा सन्नयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइय-पीण-रइयपासा अकरंडुयकणगरुयग- निम्मल-सुजाय-निरुवहय-देहधारी पसत्थ-बत्तीसलक्खणधरा कणगसिला-यलुज्जलपसत्थ-समतल-उवचिय-वित्थिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिह-वट्टियभुया [2]भुयगोसरविउलभोगआयाणफलिह-उच्छूढदीहबाहू जुगस-न्निभपीण-रइय-पीवरपउट्ठसंठिय-उवचिय-घण - थिर-सुबद्ध - सुवट्ट-सुसिलिट्ठ लट्ठपव्वसंधी रत्ततलोवचिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खणपसत्यअच्छिद्द-जालपाणी पीवर-वट्टिय-सुजाय-कोमलवरंगुलिया तंब-तलिण-सुइरुइर-निद्धनक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा [3]सोत्थियपाणिलेहा ससि-रवि-संख-चक्क-सोत्थियविभत्त[4]-सुविरइयपाणिलेहा वरमहिसवराह-सीह-सद्दूल-उसभ-नागवरविउल-पडिपुन्न-उन्नय-मउदक्खंधा[5] चउरंगुलसुपमाण-कंबुवरसरिसगीवा अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमंसू मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूलविउलहणुया ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसन्नि-भाधरुट्ठा[6] पंडुरससिसगलविमल-निम्मलसंख-गोखीरकुंद-दगरय-मुणालिया-धवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता [7]सुनिद्धदंता सुजायदंता एगदंतसेढी[8] विव अणेगदंता हुयवहनिद्धंत-धोय-तत्ततवणि-ज्जरत्ततल-तालु-

---

१. °यअक्कोसाय° स० पु० । °यविक्कोसा° वृ० ॥ २. °यगेस° पु० ॥ ३-४. °सत्थिय° पु० ॥ ५ °मउद° स० ॥ ६ °घरओट्ठा पडर° स० ॥ ७. °सुद्धद° स० ॥ ८ °दंता से° वृपा० ॥

तरग के समूह के समान घुमावदार और सूर्य की किरणो से विकसित कमल की तरह गम्भीर और गूढ, **रोमराजि** ऋजु, समान रूप से सटी हुई, सुन्दर, स्वाभाविक, पतली, काली, स्निग्ध, प्रशस्त, लावण्ययुक्त, अतिकोमल, मृदु और रमणीय, **कुक्षि** मत्स्य और पक्षी के समान उन्नत, **उदर** मत्स्य के समान, **नाभि** कमल के समान विस्तीर्ण, स्निग्ध पार्श्व वाले, झुके हुए पार्श्व वाले, मनोहर पार्श्व वाले, सुन्दर रूप से उत्पन्न पार्श्व वाले, अल्प रोम युक्त पार्श्व (वाले होते हैं)। (वे ऐसे) देह के धारक (होते हैं), (जिनकी) रीढ की हडडी मास से भरी होने से नजर नही आती (है)। (वे) स्वर्ण के समान निर्मल, सुन्दर बनावट वाले और रोगादि के उपसर्ग से रहित और प्रशस्त बत्तीस लक्षणो से युक्त (होते हैं)। (उनके) **वक्षस्थल** सोने की शिला-तल के समान उज्जवल, प्रशस्त, समतल, पुष्ट, विशाल और श्रीवत्स चिह्न से चिह्नित, **भुजाएँ** नगर के द्वार की अर्गला के समान गोलाकार, **बाहु** भुजगेश्वर के विपुल शरीर एव अपने स्थान से निकली हुई अर्गला के समान लटकती हुई, **संधियाँ** युग सन्निभ, मासल, गूढ, हृष्ट-पुष्ट, सस्थित, सुगठित, सुबद्ध, नसो से कसी हुई, ठोस, स्थिर, वर्त्तुलाकार, सुश्लिष्ट, सुन्दर एव दृढ, **हाथ** रक्ताभ हथेलियो वाले, पुष्ट, कोमल, माँसल, सुन्दर बनावट वाले और प्रशस्त लक्षणा वाले, **अगुलियाँ** पुष्ट, छिद्ररहित, कोमल एव श्रेष्ठ, **नाखून** ताँबे जैसे रग वाले, पतले, स्वच्छ, कान्ति युक्त, सुन्दर और स्निग्ध, **हस्त-रेखाएँ** चन्द्रमा-चिह्न, सूर्य-चिह्न, शख-चिह्न, चक्र-चिह्न एव स्वास्तिक आदि शुभ चिह्नो से युक्त, सूर्य, चन्द्रमा, शख, चक्र, स्वास्तिक आदि से विभक्त एव सुविरचित, **कधे** श्रेष्ठ भैंसे, सुअर, सिह, व्याघ्र, साड एव हाथी के कधे के समान विपुल, परिपूर्ण, उन्नत और मृदु, **गर्दन** चार अगुल सुपरिमित एव शख के समान श्रेष्ठ, **दाढी-मूँछ** अवस्थित—एक सी रहने वाली तथा सुस्पष्ट, **ठोढी** पुष्ट, मासल, सुन्दर एव व्याघ्र के समान विस्तीर्ण, **अधरोष्ठ** सशुद्ध मूंगे एव बिम्बफल के समान लाल रग वाले, **दाँतो की पक्ति** चन्द्रमा के टुकडे, निर्मल शख, गौदुग्ध के फेन, कुन्दपुष्प, जलकण और मृणाल नाल की तरह श्वेत, **दाँत** अखण्ड, सुडौल अविरल—एक दूसरे से सटे हुए, अत्यन्त स्निग्ध एव सुन्दर, एक दन्त पक्ति अनेक दाँतो वाली, तालु एव जिह्वा तल अग्नि मे तपाकर धोये हुए स्वच्छ सोने के समान, **स्वर** सारस पक्षी के समान मधुर, नवीन मेघ के गर्जन के समान गभीर तथा क्रौञ्च पक्षी के घोष के

जीहा [1]सारसनवथणियमहुरगभीर-कुचनिग्घोस-दुदुहिसरा गरुलायय-उज्जु-तुगनासा अवदारिअपुडरीयवयणा कोकासियधवलपुडरीयपत्तलच्छा आनामियचावरुइल-किण्हचिहुरराइसुसठिय - सगय - आयय - सुजायभुमया अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा सुसवणापीणमसलकवोलदेस-भागा [2]अइरुग्गय-समग्ग-सुनिद्धचदद्धसठियनिडाला [3]उडुवइपडिपुन्नसोमवयणा छत्तागारुत्त-मगदेसा घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुन्नय-कूडागार [निभ-] निरुवमपिंडि-यऽग्गसिरा हुयवहनिद्ध त-धोय-तत्ततवणिज्जकेसतकेसभूमी सामलीवोडघण-निचिच्छोडिय-मिउ-विसय-सुहुम[4]-लक्खणपसत्थ-सुगधि-सुदर-भुयमोयग-भिंग-नील-कज्जल - पहट्ठभमरगणनिद्ध - निउरबनिचिय -कुचिय-पयाहिणावत्तमुद्ध-सिरया लक्खण-वजणगुणोववेया माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वग-सुदरगा ससिसोमागारा[5] कंता पियदंसणा सब्भावसिंगारचारुरूवा पासा-ईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ ६६ ॥

ते णं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा हसस्सरा कोचस्सरा नदिस्सरा नदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मजुस्सरा मजुघोसा सुस्सरा सुस्सरघोसा[6] अणुलोमवाउवेगा ककग्गहणी कवोयपरिणामा [7]सउणिप्फोस-पिट्ठतरो-रुपरिणया पउमुप्पल[8] गधसरिसनीसासा[9] सुरभिवयणा छवी निरायका [10]उत्तम - पसत्थाऽइसेस - निरुवमत - जल्लमल-कलक-सेय-रय-दोसवज्जिय-सरीरा[11] निरुवलेवा छायाउज्जोवियगमगा वज्जरिसहनारायसघयणा समचउरससठाणसठिया छधणुसहस्साइ उड्ढ उच्चत्तेण पण्णत्ता । ते णं मणुया[12] दो छप्पन्नपिट्ठकरडगसया पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ ६७ ॥

---

१ सारसमहुर° वृ० ॥ २. °ग्गवालचदसठिय° स० ॥ ३ °वयपडि° पु० ॥ ४ °सुहम° सं० ॥ ५. °गार-कत-पिय° सं० ॥ ६ °स्सरनिग्घोसा स० ॥ ७. °णीपोस° सं० पु० ॥ ८ °लसुरभिगघनी° सं० । °लसुगधिसरिसनी°-सा० ॥ ९ °नीसाससुर° वृ० ॥ १० °पसत्थ-अहय-सम-निरुवहयवयणा-जल्ल°, सं० ॥ ११. °सरीरनिरु° वृ० ॥ १२. °या वे छ सं० ॥

समान दुदुंभि युक्त, **नाक** गरूड की चौंच के समान लम्वी, सीधी और उन्नत, **मुख** विकसित कमल के समान, **आँखें** पद्म कमल की तरह विकसित, धवल एव पत्रल **भौंहे** थोडी नीचे झुकी हुई धनुष के समान सुन्दर, पक्तियुक्त, काले मेघ के समान उचित मात्रा मे लम्बी और सुन्दर, **कान** कुछ शरीर से चिपके हुए, प्रमाण युक्त, गोल और आस-पास का भाग मासल युक्त एव पुष्ट, **ललाट** अर्द्ध चन्द्रमा के समान सस्थित, **मुख** परिपूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य, **मस्तक** छत्र के आकार के समान उभरा हुआ, **सिर का अग्रभाग** मुद्गर के समान, सुदृढ नसो से आवद्ध, उन्नत लक्षणो से युक्त, एवं उन्नत शिखर युक्त **सिर की चमडी** अग्नि मे तपाये हुए स्वच्छ सोने के समान लाल रग से युक्त, **सिर के बाल** शाल्मली (सेमल) वृक्ष के फल के समान घने, प्रमाणोपेत, वारीक,कोमल, सुन्दर, निर्मल, स्निग्ध, प्रशस्त लक्षणो से युक्त, सुगन्धित, सुन्दर, भुजभोजक रत्न, नीलमणी एव काजल के समान काले हर्षित भ्रमरो के झुण्ड की तरह समूह रूप, घुघराले और दक्षिणावर्त्त (होते हैं) । (वे) उत्तम लक्षणो, व्यजनो, गणो से परिपूर्ण प्रमाणोपेत मान-उन्मान, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाले, सुन्दर, प्रियदर्शी, स्वाभाविक श्रृगार के कारण सुन्दर रूप वाले, प्रासाद गुणयुक्त, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप (होते हैं) ।

(६७) वे मनुष्य अक्षरित स्वर वाले, मेघ के समान स्वर वाले, हस के समान स्वर वाले, क्रौञ्च पक्षी के समान स्वर वाले, नन्दी स्वर वाले, नन्दी घोप वाले, सिंह के समान स्वर वाले, सिंह-घोप वाले, दिशा-कुमार देवो के घण्टे के समान स्वर एव घोष वाले, उदधि कुमार देवो के घण्टे के समान स्वर एव घोप वाले, शरीर मे वायु के अनुकूल वेग वाले, कपोत के समान स्वभाव वाले, शकुनि पक्षी के समान निर्लेप मलद्वार वाले, पीठ एव पेट के नीचे सुगठित दोनो पार्श्व एव उचित परिमाण जघाओ वाले, पद्म कमल या नील कमल के समान सुगन्धित मुख वाले, तेजयुक्त, निरोग, उत्तम, प्रशस्त, अत्यन्त श्वेत, अनुपम, जल्ल-मल्ल, दाग, पसीने एव रज से रहित शरीर वाले, अत्यन्त स्वच्छ, प्रभा से उद्योतित अग वाले, वज्रऋषभ-नाराच सहनन वाले, समचतुरस्रसस्थान मे सस्थित एव छः हजार धनुष ऊँचाई वाले कहे गये है। हे आयुष्मान् श्रमण ! वे मनुष्य दो सौ छप्पन पीठ की हड्डियो से युक्त कहे गये है।

ते ण मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसता पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभा मिउ-मद्दवसपन्ना अल्लीणा भद्दया विणीया अप्पिच्छा असन्नि-हिसचया अचडा असि-मसि-किसी-वाणिज्जविवज्जिया विडिमंतर-निवासिणो इच्छियकामकामिणो गेहागाररुक्खकयनिलया पुढवि-पुप्फ-फलाहारा, ते णं मणुयगणा पण्णत्ता ॥६८॥

(संपइकालीणमणुयाणं देह-संघयणाइहाणी धम्मियजणपसंसा य)

आसी य समणाउसो ! पुव्वि मणुयाण छव्विहे संघयणे । त जहा—वज्जरिसहनारायसघयणे १ रिसहनारायसंघयणे २ नारायसघयणे ३ अद्धनारायसघयणे ४ [1]कीलियासंघयणे ५ छेवट्ठसंघयणे ६ । सपइ खलु आउसो ! मणुयाणं छेवट्ठे सघयणे वट्टइ ॥६९॥

आसी य आउसो ! पुव्वि मणुयाण छव्विहे संठाणे । त जहा—समचउरसे १ नग्गोहपरिमंडले २ [2]सादि ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुडे ६ । सपइ खलु आउसो ! मणुयाण हुडे सठाणे वट्टइ ॥७०॥

सघयण संठाणं उच्चत्त आउय च मणुयाण ।
अणुसमय परिहायइ ओसप्पिणिकालदोसेण ॥७१॥

कोह-मय-माय-लोभा उस्सन्न वड्ढए[3] मणुस्साण ।
कूडतुल कूडमाणा तेणऽणुमाणेण सव्वं ति ॥७२॥

विसमा अज्ज तुलाओ, विसमाणि य जणवएसु माणाणि ।
विसमा रायकुलाइ, तेण उ विसमाइ वासाइं ॥७३॥

विसमेसु य वासेसु हुति असाराइं ओसहिबलाइं ।
ओसहिदुब्बल्लेण य आउ परिहायइ नराण ॥७४॥

एव परिहायमाणे लोए चंदु[4] व्व कालपक्खम्मि ।
जे धम्मिया [5]मणुस्सा सुजीविय जीवियं तेसिं ॥७५॥

---

१ खीलिया° स० ॥ २. साति स० ॥ ३ °ए य मणुयाण सा० ॥ ४. चदो व्व स० ॥ ५ मणूसा सा० पु० ॥

(६८) वे मनुष्य स्वभाव से सरल, प्रकृति से विनीत, स्वभाव से विकार-रहित, प्रकृति से स्वल्प क्रोध-मान-माया-लोभ वाले, मृदु और मार्दव सम्पन्न, तल्लीन, सरल, विनीत, अल्प इच्छा वाले, अल्पसंग्रही, शान्त स्वभावी, असि-मसि-कृषि एव व्यापार से रहित, गृहाकार वृक्ष की शाखाओ पर निवास करने वाले,[1] इप्सित विपयाभिलाषी, कल्पवृक्ष पर लगे हुए पृथ्वी फल एवं पुष्प का आहार करने वाले कहे गये हैं।

(सम्प्रतिकालीन मनुष्यों की देह, संहनन आदि की हानि और धर्म जन प्रशंसा)

(६९) हे आयुष्मान् श्रमण ! पूर्वकाल मे मनुष्यो के छ प्रकार के संहनन होते थे, जो इस प्रकार हैं :—(१) वज्रऋषभनाराच सहनन (२) ऋषभनाराच सहनन (३) नाराच सहनन (४) अर्द्ध-नाराच सहनन (५) कीलिका सहनन (६) सेवार्त्त संहनन। हे आयुष्मान् ! सम्प्रति काल मे मनुष्यो का सेवार्त सहनन ही होता है।

(७०) हे आयुष्मान् ! पूर्व काल मे मनुष्यो के छः प्रकार के सस्थान होते थे, जो इस प्रकार हैं :—(१) समचतुरस्र (२) न्यग्रोधपरिमण्डल (३) सादिक (४) कुब्ज (५) वामन (६) हुण्डक। किन्तु हे आयुष्मान् ! सम्प्रति काल मे मनुष्यो का मात्र हुण्डक सस्थान ही होता है।

(७१) मनुष्यो का सहनन, सस्थान, ऊँचाई और आयुष्य अवसर्पिणी काल के दोष के कारण समय-समय क्षीण होती रहती है।

(७२) उसी (काल दोष) के कारण मनुष्यो के क्रोध, मद, माया, लोभ एव खोटे तोल-माप की प्रवृत्ति आदि सभी (अवगुण) बढते हैं।

(७३) उसी के अनुसार आज तुलायें विषम होती है और जनपदो मे माप-तोल (भी) विषम होते हैं। राजकुल विषम होता है और वर्ष भी विषम होते है।

(७४) विपम वर्षों अर्थात् विषम काल मे औषधि की शक्ति भी निस्सार हो जाती है। इस समय मे औषधि के दौर्बल्य के कारण मनुष्यो की आयु अल्प हो जाती है।

(७५) इस प्रकार कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की तरह ह्रासमान लोक मे जो धर्म मे अनुरक्त मनुष्य है, वे ही अच्छी तरह जीवन जीते हैं।

---

१ वृक्ष की शाखाएं प्रासाद की तरह आकृति वाली होती थी, वे उन पर निवास करने वाले होते थे।

(वाससयाउयमणुयस्स वाससयविभागा आहारपमाणाइ य)

आउसो ! से जहानामए केइ पुरिसे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सिरसिण्हाए कठेमालकडे आविद्धमणि-सुवण्णे अहय-सुमहग्घवत्थपरिहिए चदणोक्किण्णगायसरीरे सरससुरहिगधगोसीसचद-णाणुलित्तगत्ते सुइमालावन्नग-विलेवणे कप्पियहारऽद्धहार-तिसरय-पालबपलं-बमाणकडिसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अगुलेज्जगललियंगयललियकया-भरणे नाणामणि-कणग-रयणकडग-तुडियथभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुडलुज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए [1]हारुच्छयसुकय-रइयवच्छे पालबपल-बमाण-सुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलगुलिए नाणामणिकणग-रयणविमल-महरिह -निउणोविय-मिसिमिसित-विरइय- सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठआविद्धवीर-वलए। किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव अलकिय-विभूसिए सुइपए भवित्ता अम्मा-पियरो अभिवादएज्जा। तए ण त पुरिस अम्मा-पियरो एवं वएज्जा—जीव पुत्ता ! वाससय ति। तं पि आइ तस्स नो बहुयं भवइ कम्हा ? ॥७६॥

वाससय जीवतो वीसं जुगाइ जीवइ, वीस जुगाइ जीवंतो दो अयणसयाइ जीवइ, दो 'अयणसयाइ जीवतो छ 'उउसयाइ' जीवइ, छ [2]उउसयाइ जीवतो बारस माससयाइ जीवइ, बारस माससयाइ जीवत्तो चउवीसं पक्खसयाइं जीवइ, चउवीस पक्खसयाइ जीवतो, छत्तीसं राइंदिअसहस्साइ जीवइ, छत्तीस राइदियसहस्साइ जीवतो दस असीयाइ[3] मुहुत्तसयसहस्साइं जीवइ दस [4]असीयाइ मुहुत्तसयसहस्साइ जीवतो चत्तारि ऊसासकोडिसए सत्त य कोडीओ अडयालीस च सयसहस्साइ चत्तालीसं च ऊसाससहस्साइ जीवइ, चत्तारि य ऊसासकोडिसए जाव चत्तालीसं च ऊसाससहस्साइ जीवतो अद्धत्तेवीस तदुलवाहे भुजइ ॥७७॥

---

१. हारोत्थय° स० ॥ २. रिउस° सं० ॥ ३-४. आसीयाइ सं० ॥

(मनुष्य की सौ वर्ष वायु, सौ वर्ष विभाग और आहार परिमाण आदि)

(७६) हे आयुष्मन् ! वह यथानाम का कोई पुरुष स्नान करके, देवताओ की पूजा करके, कौतुक-मगल और प्रायश्चित करके, सिर से स्नान करके, गले मे माला पहनकर, मणियो और स्वर्णाभूषो को धारण करके, नवीन और वहुमूल्य-वस्त्र धारण करके, चन्दन से उपलिप्त शरीर वाला होकर, स्निग्ध, सुगधित गौशीर्ष चन्दन से अनुलिप्त शरीर वाला होकर, शुद्ध मालाओ और विलोपन से युक्त हो, सुन्दर हार, अर्द्धहार, तीन-लड़ी वाले हार, लटकाते हुए सुन्दर कटिसूत्र (कन्दौरा) से शोभायमान होकर, वक्षस्थल पर ग्रैवेयक, अगुलियो मे सुन्दर मुद्रिकायें और भुजाओ पर अनेक प्रकार की मणियो और रत्नो से जडित बाजुवन्द से विभूषित होकर, अत्यधिक शोभा से युक्त, कुण्डलो से प्रकाशित (उद्योतित) मुखवाला, मुकुट से दीप्त मस्तक वाला, विस्तृत हार की छाया जिसके वक्षस्थल को मुख प्रदान कर रही हो, लम्बे सुन्दर वस्त्र के उत्तरीय को धारण कर अगुठियो से पीत वर्ण की अँगुलियो वाला, विविध मणि, स्वर्ण, विशुद्ध रत्न युक्त, बहुमूल्य, प्रकाश-युक्त, सुश्लिष्ट, विशिष्ठ, मनोहर, रमणीय और वीरत्व का सूचक कडा धारण कर अधिक क्या कहना ? कल्पवृक्ष के समान, अलकृत, विभूषित एव पवित्र होकर अपने माता-पिता को प्रणाम करता है। तब उस पुरुष के माता-पिता ने इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! शतायु हो। किन्तु उसकी आयु (सौ वर्ष की) होती है (तो ही वह सौ वर्ष जीता है अन्यथा नहीं) आयु से अधिक कैसे जी सकता है।

(७७) सौ वर्ष जीता हुआ वह बीस युग जीता है। बीस युग जीता हुआ वह दो सौ अयन जीता है। दो सौ अयन जीता हुआ वह छ सौ ऋतु जीता है। छ सौ ऋतुओ को जीता हुआ वह बारह सौ महिने जीता है। बारह सौ महिने जीता हुआ वह चौबीस सौ पक्ष जीता है। चौवीस सौ पक्ष जीता हुआ वह छत्तीस हजार रात-दिन जीता है। छत्तीस हजार रात-दिन जीता हुआ, वह दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त्त जीता है। दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त्त जीता हुआ वह चार सौ सात करोड अडतालीस लाख चालीस हजार श्वासोश्वास जीता है। चार सौ करोड श्वासोश्वास यावत् चालीस हजार श्वासोश्वास जीता हुआ वह साढे बाईस तदुलवाह[1] खाता है।

---

१. अन्न का एक परिमाण विशेष जिसकी व्याख्या आगे की गयी है।

कहमाउसो ! अद्धत्तेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ? गोयमा ! दुब्बलाए खंडियाणं बलियाए छडियाणं खइरमुसलपच्चाहयाणं ववगयतुस-कणियाणं अखंडाणं अफुडियाणं फलगसरियाणं [1]इक्किक्कबीयाणं अद्धत्तेरसपलियाणं[2] पत्थएणं। से वि य णं पत्थए मागहए। कल्लं पत्थो १ सायं पत्थो २। चउसट्ठितंदुलसाहस्सीओ मागहओ पत्थो। बिसाहस्सिएणं कवलेणं बत्तीसं कवला पुरिसस्स आहारो, अट्ठावीसं इत्थियाए, चउवीसं पंडगस्स। एवामेव आउसो ! एयाए गणणाए दो असईओ पसई, दो पसईओ य सेइया होइ, चत्तारि सेइयाओ कुलओ, चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्था आढगं, सट्ठी आढगाणं जहन्नए कुंभे, असीई आढयाणं मज्झिमे कुंभे, आढगसयं उक्कोसए कुंभे, अट्ठेव य आढगसयाणि वाहे। एएणं वाहप्पमाणेणं अद्धत्तेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ॥७८॥ ते य गणियनिद्दिट्ठा—

चत्तारि य कोडिसया सट्ठिं चेव य हवंति कोडीओ।
असिइं च तंदुलसयसहस्सा हवंति त्ति मक्खायं ॥७९॥
॥ ४६०८०००००० ॥

तं एवं अद्धत्तेवीसं तंदुलवाहे भुंजतो अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजइ, अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजतो चउवीसं णेहाढगसयाइं भुंजइ, चउवीसं णेहाढगसयाइं भुंजतो छत्तीसं लवणपलसहस्साइं भुंजइ, छत्तीसं लवणपलसहस्साइं भुंजतो छप्पडसाडगसयाइं नियंसेइ, दोमासिएणं परिअट्टएणं मासिएणं वा परियट्टएणं बारस पडसाडगसयाइं नियंसेइ। एवामेव आउसो ! वाससयाउयस्स[3] सव्वं गणियं तुलियं मवियं नेह-लवण-भोयण-ऽच्छायणं पि।[4]—एयं गणियपमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं—। जस्सऽत्थि तस्स गणिज्जइ, जस्स नत्थि तस्स किं गणिज्जइ ? ॥८०॥

---

१. एक्केक्क° सं० ॥ २. °पलिएणं पत्थएणं सं० ॥ ३. °स्स एयं गणियं सं० ॥ ४. ।— —। एतच्चिह्नमध्यवर्त्ती पाठः सं० नास्ति ॥

(७८) हे आयुष्मान् ! वह साढे वाईस तदुलवाह कैसे खाता है ? हे गौतम ! दुर्बल स्त्री के द्वारा खण्डित, वलवान स्त्री के द्वारा सूप आदि से छटक, खैर के मूसल से कूट कर भूसी और ककर से रहित कर, अखण्डित एव परिपूर्ण चावलो के साढे बारह पलो का एक प्रस्थ होता है। वह प्रस्थक मागध भी कहा जाता हे। दो बार (चावल खाता है)। (१) सुवह एक प्रस्थ (२) सायकाल एक प्रस्थ[1]। एक मागध या प्रस्थक मे चौसठ हजार चावल (होते हैं)। दो हजार चावल के दानो के एक कवल के द्वारा पुरुष का आहार बत्तीस कवल, स्त्री का अठाईस कवल और नपुसक का चौबीस कवल होता है। इस प्रकार ह आयुष्मान् ! यह गणना इस प्रकार है—दो असती की एक प्रसृति, दो प्रसृति की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थक, चार प्रस्थक का एक आढक, साठ आढक का एक जघन्य कुम्भ, अस्सी आढक का मध्यम कुम्भ, सौ आढक का उत्कृष्ट कुम्भ और आठ सौ आढक का एक वाह होता है। इस वाह प्रमाण से पुरुष साढे वाईस वाह तदुल खाता है। इस गणित के अनुसार :—

(७९) (एक वाह मे) चार सौ साठ करोड़ और अस्सी लाख चावल के दानें होते हैं। इस प्रकार कहा गया है।

(८०) इस प्रकार साढे बाईस वाह तन्दुल खाता हुआ, वह साढे पाँच कुभ मूँग खाता है, साढे पाँच कुभ मूँग खाता हुआ वह चौवीस सौ आढक घृत और तेल खाता है, चौवीस सौ आढक स्नेह खाता हुआ वह छत्तीस हजार पल नमक खाता है, छत्तीस हजार पल नमक खाता हुआ वह दो मास मे बदलने पर छ· सौ धोती (कपडा) पहनता है। अगर एक मास मे बदलता है (नई धारण करता है), तो बारह सौ धोती (कपडा) पहनता हैं। इस प्रकार हे आयुष्मान् ! सौ वर्ष की आयु के (मनुष्यो के लिए) स्नेह, नमक, भोजन और वस्त्र का यह सब गणित या माप-तोल है। यह गणित परिमाण भी महर्षियो के द्वारा दो प्रकार का कहा गया है। जिसके (सब कुछ खाने-पीने पहनने को) है उसकी गणना की जाती है। जिसके (ये सब) नही है, उसकी क्या गणना की जाय ?

---

१. प्रस्थक या मागध के प्रमाण से प्रतिदिन प्रात के भोजन के लिए एक प्रस्थक एव शाम के भोजन हेतु एक प्रस्थक अन्न की आवश्यकता होती है।

ववहारगणिय दिट्ठं [1]सुहुम निच्छयगय मुणेयव्वं ।
जइ एय न वि एयं विसमा गणणा मुणेयव्वा ॥८१॥

(समयाइकालपमाणसरूवं)

कालो परमनिरुद्धो अविभज्जो तं तु जाण समयं तु ।
समया य असखेज्जा हवंति उस्सास-निस्सासे ॥८२॥

हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसास-नीसासे एस पाणु त्ति वुच्चइ ॥८३॥

सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे ।
लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥८४॥

एगमेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया ऊसासा वियाहिया ? गोयमा !

तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥८५॥

दो नालिया मुहुत्तो, सट्ठि पुण नालिया अहोरत्तो ।
पन्नरस अहोरत्ता [2]पक्खो, पक्खा दुवे मासो ॥८६॥

(कालपमाणनिवेययघडियाजंतविहाणविही)

दाडिमपुप्फागारा लोहमई[3] नालिया उ कायव्वा ।
तीसे तलम्मि छिद्दं, छिद्दपमाण पुणो वोच्छं ॥८७॥

[4]छण्णउइ पुच्छवाला तिवासजयाए गोति (? भि) हाणीए ।
[5]अस्सवलिया उज्जुय नायव्वं नालियाछिद्दं ॥८८॥

---

१. सुहमं स० ॥ २. पक्खो, मासो दुवे पक्खा सं० ॥ ३. °मती ना° सं० ॥ ४. छण्णउतिमूलवालेहि तिवस्सजाताय गोकुमारीय । उज्जुगतपिंडितेहि तु कातव्वं णालियाछिड्डु ॥१०॥ इतिस्वरूपा ज्योतिष्करण्डके दृश्यते । अत्र श्री मलयगिरिपादै गोकुमारोयस्थाने गयकुमारीए इति पाठ उज्जुगत°स्थाने उज्जुकत°इति च पाठ आदृतोऽस्ति । तथा ज्योतिष्करण्डकमूलप्रत्यन्तरेषु उज्जुगतपिंडितेहि तु स्थाने उज्जुकयाऽसवलिया इति पाठभेदो दृश्यते ॥ ५. असवलिया उज्जा य नाय° सा० पु० ॥

(८१) पहले व्यवहार गणित को देखा गया। दूसरी सूक्ष्म और निश्चयगत गणित जाननी चाहिए। यदि इस प्रकार न हो तो गणना विषम जाननी चाहिए।[1]

(समय आदि काल परिमाण का स्वरूप)

(८२) सर्वाधिक सूक्ष्म काल, जिसका विभाजन नही किया जा सके उसे समय जानना चाहिए। एक उच्छ्वास नि श्वास मे असख्यात समय होते हैं।

(८३) हृष्ट-पुष्ट, ग्लानिरहित और कष्ट रहित पुरुष का जो एक उच्छ्वास-नि श्वास होता है, उसे ही प्राण कहते हैं।

(८४) सात प्राणो का एक स्तोक (काल), सात स्तोको का एक लव और सतहत्तर लवों का एक मुहूर्त्त कहा गया है।

(८५) हे भगवन्! एक मुहूर्त्त मे कितने उच्छ्वास कहे गये हैं? हे गौतम! (एक मुहूर्त्त मे) तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वास (होते हैं)। सभी अनन्तज्ञानियो के द्वारा यही मुहूर्त्त (परिमाण) बताया गया है।

(८६) दो घडी का एक मुहूर्त्त, साठ घडी का एक दिन-रात, पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष और दो पक्षो का एक महिना (होता है)।

(काल परिमाण निवेदक घटिका यन्त्र विधान विधि)

(८७) अनार के पुष्प की आकृति वाली लोहमयी घडी बना करके उसके तल मे छिद्र करना चाहिए। पुन- उस छिद्र प्रमाण को कहूँगा।

(८८) तीन वर्ष के गाय के बच्चे के पूछ के छियानवें बाल जो सीधे हो और मुडे हुए नही हो वैसा (उस आकार का) घडी का छिद्र होना चाहिए।

---

१. पूर्व में जिस गणित से सौ वर्ष आयु वाले पुरुष के भोजन और वस्त्र की गणना की गयी है, वह व्यवहार गणित है। दूसरी सूक्ष्म गणित होती है, जब इसके अनुसार गणना की जाती है, तब व्यवहार गणित की गणना नही रहती। दोनो की गणना परस्पर भिन्न जाननी चाहिए।

[1]अहवा उ पुछवाला दुवासजायाए [2]गयकरेणूए ।
दो वाला उ अभग्गा नायव्वं नालियाछिद्दं ॥८९॥

[3]अहवा सुवण्णमासा चत्तारि [4]सुवट्टिया घणा सूई ।
चउरंगुलप्पमाणा, [5]कायव्वं नालियाछिद्दं ॥९०॥

उदगस्स नालियाए भवति दो आढगा उ परिमाणं ।
[6]उदग च भाणियव्व जारिसयं त पुणो वोच्छं ॥९१॥

[7]उदगं खलु नायव्व, कायव्वं दूसपट्टपरिपूयं ।
मेहोदगं पसन्न सारइय वा गिरिनईए[8] ॥९२॥

(वरिसमज्झे मास-पक्ख-राइंदियपमाणं)

[9]बारस मासा संवच्छरो उ, पक्खा य ते चउव्वीसं ।
तिन्नेव[10] य सट्ठसया हवति राइदियाण च ॥९३॥

(राइंदिय-मास-वरिस-वरिससयमज्झे ऊसासमाणं)

एग च सयसहस्सं तेरस चेव य भवे सहस्साइ ।
एग च सयं नउय हवति राइदिऊसासा ॥९४॥

तेत्तीस सयसहस्सा पंचाणउई[11] भवे सहस्साइ ।
सत्त य सया अणूणा हवति मासेण ऊसासा ॥९५॥

---

१. अहवा दुवस्सजायाय गयकुमारीय पुछवालेहिं । बिहि बिहिं गुणेहिं तेहिं तु कातव्व णालियाछिड्ड ॥१९॥ इतिरूपा गाथा ज्योतिष्करण्डके । एतत्प्रत्यन्तरेषु पुन —अघवा दुवस्सजाताए गयकणेरूए पुछसभूया । दो वाला ओभग्गा कायव्व नालियाछिद्द ॥१९॥ इत्याकार पाठभेद उपलभ्यते ॥ २ °कणेरूवे सं० ॥ ३. अघवा सुवण्णमासेहि चतुहि चतुरगुला कया सूयो । णालियतलम्मि तीय तु कातव्वं णालियाछिड्ड ॥२०॥ इतिप्रकारा गाथा ज्योतिष्करण्डके वर्त्तते । अपि चैतत्प्रत्यन्तरेष्विय गाथा सुवट्टियास्थाने सुकुट्टिता इत्येतन्मात्रपाठभेदेन तन्दुलवैतालिकसमानाऽपि दृश्यते ॥ ४ सवट्टिया- स० ॥ ५ नायव्वं सा० वृ० ॥ ६ उदग च इच्छितव्व जारिसग त च वोच्छामि इतिरूपमुत्तरार्द्धे ज्योतिष्करण्डके गा० ३४ ॥ ७ एयस्स तु परिकम्म कायव्व ज्योति० गा० ३५ ॥ ८ °नदीण स० ज्योति० गा० ३५ ॥ ९. सवच्छरो उ बारस मासा, पक्खा ज्योति० गा० ३८ ॥ १० °व सया सट्ठा ह° ज्योति० गा० ३८ ॥ ११. °णउय भ° स० ॥

(८९) अथवा दो वर्ष के हाथी के बच्चे के पूछ के दो बाल जो टूटे हुए नही हो, उस आकार का घडी का छिद्र होना चाहिए।

(९०) अथवा चार मासे सोने की एक गोल और कठोर सुई, जिसका परिमाण चार अगुल का हो, उसके समान घडी का छिद्र करना चाहिए।

(९१) (उस) घडी मे पानी का परिमाण दो आढक होना चाहिए। पुनः वह पानी जैसा बताया गया है, उसे कहता हूँ।

(९२) पानी को कपडे के द्वारा छान कर प्रयोग करना चाहिए। (वह पानी) मेघ का स्वच्छ जल हो या शरदकालीन पर्वतीय नदी का (हो), ऐसा जानना चाहिए।

(वर्ष के मास, पक्ष और रात-दिन का परिमाण)

(९३) बारह माह का एक वर्ष (होता है), एक वर्ष मे चौवीस पक्ष और तीन सौ साठ रात दिन होते हैं।

(दिन, रात, मास, वर्ष और सौ वर्ष के उच्छ्वास परिमाण)

(९४) एक रात दिन मे एक लाख तेरह हजार एक सौ नब्बे उच्छ्वास होते हैं।

(९५) एक माह मे तैंतीस लाख पचानवे हजार और पूरे (अन्यून) सात सौ उच्छ्वास होते हैं।

चत्तारि य कोडीओ सत्तेव य हुंति सयसहस्साइं[1] ।
अडयालीस सहस्सा चत्तारि सया य वरिसेण ॥९६॥
चत्तारि य कोडिसया सत्त य कोडीओ हुंति अवराओ ।
अडयाल सयसहस्सा चत्तालीस सहस्सा य ॥९७॥
वाससयाउस्सेए उस्सासा एत्तिया मुणेयव्वा ।
पिच्छह आउस्स खय अहोनिसं झिज्जमाणस्स ॥९८॥

(आउअवेक्खाए अणिच्चयापरूवणा)

राइदिएण तीसं तु मुहुत्ता, नव सया उ मासेण ।
हायंति पमत्ताण, न य ण अबुहा वियाणंति ॥९९॥
तिन्नि सहस्से सगले छ च्च सए उडुवरो हरइ आउं ।
हेमंते गिम्हासु य वासासु य होइ नायव्व ॥१००॥
वाससय परमाउं एत्तो पन्नास हरइ निद्दाए ।
एत्तो वीसइ हायइ बालत्ते वुड्ढभावे य ॥१०१॥
सी-उण्ह-पंथगमणे खुहा पिवासा भय च सोगे य ।
नाणाविहा य रोगा हवंति तीसाइ[2] पच्छद्धे ॥१०२॥
एवं पचासीई नट्ठा, पन्नरसमेव जीवंति ।
जे होंति वाससइया, न य सुलहा वाससयजीवी ॥१०३॥
एवं निस्सारे माणुसत्तणे जीविए अहिवडंते ।
न करेह चरणधम्मं, पच्छा पच्छाणुतप्पिहिह[3] ॥१०४॥
घुट्ठम्मि सयं मोहे जिणेहिं वरधम्मतित्थमग्गस्स ।
अत्ताणं च न याणह इह जाया कम्मभूमीए ॥१०५॥
[4]नइवेगसम चवलं च जीवियं, जोव्वणं च कुसुमसमं ।
सोक्ख च जमनियत्त तिन्नि वि तुरमाणभोज्जाइं ॥१०६॥
एय खु जरा-मरणं परिक्खिवइ वग्गुरा व मिगजूह ।
न य णं पेच्छह पत्त सम्मूढा मोहजालेणं ॥१०७॥

---

१. सहस° सं० ॥ २ "त्रिंशत पश्चार्द्धें, कोऽर्थ. ? शेषत्रिशतो मध्यात् पञ्चदशवर्षाणि" इति वृत्तिकृत ॥ ३ °णुतप्पिहहा सा० पु० । °णुताहेहा वृमू° ॥ ४ नयवे° स० ॥

(९६) एक वर्ष मे चार करोड सात लाख अडतालीस हजार चार सौ उच्छ्वास होते है।

(९७-९८) सौ वर्ष की आयु मे चार सौ सात करोड़ अड़तालीस लाख चालीस हजार उच्छ्वास जानना चाहिए। अत॰ रात दिन क्षीण होती हुई आयु के क्षय को देखो।

(आयु की अपेक्षा से अनित्य का प्ररूपण)

(९९) रात दिन मे तीस और माह मे नौ सौ मुहूर्त्त प्रमादियो के नष्ट होते हैं, किन्तु अज्ञानी इसे नही जानते है।

(१००) हेमन्त ऋतु मे सूर्य पूरे तीन हजार छः सौ मुहूर्त आयु को नष्ट करता है। इसी तरह ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओ मे भी होता है, ऐसा जानना चाहिए।

(१०१) इस लोक मे सामान्य सौ वर्ष की आयु मे से पचास वर्ष निद्रा में नष्ट होते हैं। इसी प्रकार वीस वर्ष बालपन और वृद्धावस्था मे नष्ट हो जाते है।

(१०२) (शेष ३० वर्ष की आयु के) पिछले पन्द्रह वर्षों मे (व्यक्ति को) शीत, उष्ण, मार्गगमन, भूख, प्यास, भय, शोक और नाना प्रकार के रोग होते है।

(१०३) इस प्रकार पचासी वर्ष नष्ट हो जाते हैं, जो सौ वर्ष तक जीने वाले होते है वे (वास्तव मे) पन्द्रह वर्ष ही जीते हैं और सौ वर्ष तक जीने वाले भी सव नही होते हैं।

(१०४) इस प्रकार जो व्यतीत होते हुए निःस्सार मनुष्य जीवन मे सामने आते हुए चारित्र धर्म का पालन नही करता है उसे बाद मे पश्चाताप करना पड़ेगा।

(१०५) इस कर्मभूमि मे उत्पन्न होकर भी (कोई मनुष्य) मोह के वशीभूत जिनेन्द्रो द्वारा प्रतिपादित धर्म-तीर्थ रूपी श्रेष्ठ मार्ग को एव आत्म-स्वरूप को नही जानता है।

(१०६) (यह) जीवन नदी के वेग के समान चपल, यौवन फूल के समान (म्लान होने वाला) और सुख भी अशाश्वत (है), ये तीनो शीघ्र ही भोग्य हैं।

(१०७) जैसे मृग समूह को जाल परिवेष्टित कर लेता है उसी प्रकार यहाँ (मनुष्य को) जरामरण (वेष्टित करता है)। फिर भी मोह जाल से मूढ बने हुए (तुम) इसको नही देख रहे हो।

(सरीरसरूवं)

आउसो ! जं पि य इमं सरीरं इट्ठं पियं कंतं मणुण्णं मणामं मणाभिरामं थेज्जं वेसासियं सम्मयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं, रयणकरंडओ विव सुसंगोवियं, चेलपेडा विव सुसंपरिवुडं, [1]तेल्लपेडा विव सुसंगोवियं 'मा णं उण्हं मा णं सीयं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं वाला मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका फुसंतु'त्ति कट्टु । एवं पि याइं अधुवं अनिययं असासयं [2]चओवचइयं विप्पणासधम्मं, पच्छा व पुरा व अवस्स विप्पचइयव्वं ॥१०८॥

एयस्स वि याइं आउसो ! अणुपुव्वेण अट्ठारस य पिट्ठकरंडगसंधीओ[3], बारस पंसुलिकरंडया, छप्पंसुलिए कडाहे, बिहत्थिया कुच्छी, चउरंगुलिआ गीवा, चउपलिया जिब्भा, दुपलियाणि अच्छीणि, चउकवालं सिरं, बत्तीसं दंता, सत्तंगुलिया जीहा, अद्धघुट्ठपलियं हिययं, पणुवीसं पलाइं कालेज्जं । दो अंता पंचवामा पण्णत्ता, तं जहा—[4]थुल्लंते य तणुअंते य । तत्थ णं जे से [5]थुल्लंते तेणं उच्चारे परिणमइ, तत्थ णं जे से तणुयंते तेणं पासवणे परिणमइ । दो पासा पण्णत्ता, तं जहा—वामे पासे दाहिणे पासे य । तत्थ णं से [6]वामे पासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से [7]दाहिणे पासे से दुहपरिणामे । आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठं संधिसयं, सत्तुत्तरं मम्मसयं, तिन्नि [8]अट्ठिदामसयाइं, नव ण्हारुयसयाइं, सत्त सिरासयाइं, पंच पेसीसयाइं, नव धमणीओ, नवनउइं च रोमकूवसयसहस्साइं विणा केस-मंसुणा, सह केस-मंसुणा अद्धघुट्ठाओ रोमकूवकोडीओ ॥१०९॥

---

१. तेल्लकेला विव सं० वृपा० ॥ २. चयाव° वृ० ॥ ३. °डगसंधिणो बारसपासुलियकरंडया, छप्पंसु° सं० ॥ ४-५ थूलंते सा० ॥ ६ वामपासे पु० ॥ ७ दाहिणपासे पु० ॥ ८, दामाण सया° सं० ॥

[शरीर स्वरूप]

(१०८) हे आयुष्मान् ! यह शरीर, इष्ट, प्रिय, कान्त, मनोज्ञ, मनोहर, मनाभिराम, दृढ, विश्वसनीय, सम्मन, अभीष्ट, प्रशसनीय, आभूषणो एव रत्नकरण्डक के समान अच्छी तरह से गोपनीय, कपडे की पेटी एव तेल पात्र की तरह अच्छी तरह से रक्षणीय, सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, दंश, मशक, वात, पित्त, कफ, सन्निपात आदि रोगो के संस्पर्श से बचाने योग्य माना जाता है। (किन्तु यह शरीर वस्तुत:) अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, वृद्धि एव ह्रास को प्राप्त, विनाशशील है अत: पहले या बाद मे, इसका अवश्य ही परित्याग करना होगा।

(१०९) हे आयुष्मान् ! इस शरीर मे पीठ की हड्डियो मे क्रमश. अठारह सधियाँ है। (उनमे से) करण्डक के आकार की बारह पसली की हड्डियाँ होती हैं। (शेष) छः हड्डियाँ मात्र पार्श्व भाग को घेरती है जो कडाह कही जाती है। मनुष्य की कुक्षि एक वितस्ति[1] परिमाण युक्त और गर्दन चार अगुल परिमाण की होती है। उसकी जीभ चार पल, आँख दो पल[2] की होती है, हड्डियो के चार खण्डो से युक्त सिरोभाग होता है। उसके बत्तीस दाँत, सात अगुल परिमाण जीभ, साढे तीन पल का हृदय, पच्चीस पल का कलेजा होता है। उसकी दो आँते होती है। जो पाँच वाम परिमाण की कही गयी है। दो आँते इस प्रकार है—स्थूल आँत और पतली आँत। उसमे से जो स्थूल आँत है उससे मल निस्सरित होता है और उसमे जो सूक्ष्म आँत है उससे मूत्र निस्सरित होता है। दो पार्श्व कहे गये है एक वाम पार्श्व दूसरा दक्षिण पार्श्व। इसमे से जो बाँया पार्श्व है वह सुख परिणाम वाला है और जो दाँया पार्श्व है वह दुःख परिणाम वाला है (अर्थात् बाँया पार्श्व सुखपूर्वक अन्न पचाता है और दाँया दु:ख-पूर्वक)। हे आयुष्मान् ! इस शरीर मे एक सौ साठ सधियाँ हैं। एक सौ सात मर्मस्थान हैं, एक दूसरे से जुडी हुई तीन सौ हड्डियाँ हैं, नौ सौ नसें (स्नायु) हैं, सात सौ शिराएँ (नसें) हैं, पाँच सौ मास पेशियाँ हैं, नौ धमनियाँ हैं, दाढी मूँछ के रोमो के अतिरिक्त निन्यानवें लाख रोमकूप होते हैं, दाढी मूँछ के रोमो सहित साढे तीन करोड रोमकूप होते हैं।

---

१. बारह अगुल का परिमाण विशेष।

२. लगभग ५० ग्राम का एक पल होता है।

आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठ सिरासयं नाभिप्पभवाण उड्ढागामिणीण सिरमुवागयाण जाओ रसहरणीओ त्ति वुच्चति जाण सि निरुवघातेण चक्खु-सोय-घाण-जीहाबल भवइ, जाण म्मि उवघाएणं चक्खु-सोय-घाण-जीहाबल उवहम्मइ । आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठ सिरासय नाभिप्पभवाणं अहोगामिणीण पायतलमुवगयाण, जाण सि निरुवघाएण जघाबल हवइ, [1]जाण चेव से उवघाएण सीसवेयणा अद्धसीसवेयणा मत्थयसूले अच्छीणि [2]अधिज्जति । आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठ सिरासय नाभिप्पभवाणं तिरियगामिणीण हत्थतलमुवगयाण, जाण सि निरुवघाएण बाहुबलं हवइ, ताण चेव से उवघाएण पासवेयणा [3]पोट्टवेयणा कुच्छिवेयणा कुच्छिसूले भवइ । आउसो ! इमस्स जतुस्स सट्ठ सिरासय नाभिप्पभवाण अहोगामिणीणं गुदपविट्ठाण, जाणं सि निरुवघाएण मुत्त-पुरीस-वाउकम्म पवत्तइ, ताण चेव उवघाएण मुत्त-पुरीस-वाउनिरोहेण अरिसाओ खुब्भति [4]पडुरोगो भवइ ॥११०॥

आउसो ! इमस्स जतुस्स पणवीस सिराओ [5]सिंभधारिणीओ, पणवीसं सिराओ [6]पित्तधारिणीओ, दस सिराओ [7]सुक्कधारिणीओ, सत्त सिरासयाइ पुरिसस्स, तीसूणाइ इत्थीयाए, वीसूणाइ पडगस्स ॥१११॥

आउसो ! इमस्स जतुस्स रुहिरस्स आढय, वसाए अद्धाढयं, [8]मत्थुलिंगस्स पत्थो, मुत्तस्स आढयं, पुरीसस्स पत्थो, पित्तस्स कुलवो, सिंभस्स कुलवो, सुक्कस्स अद्धकुलवो । ज जाहे दुट्ठ भवइ त ताहे अइप्पमाण भवइ ॥११२॥

---

१. ताण स० ॥ २. अधीयति पु० । ३ पोट्टवेयणा स्थाने वृत्तिकृता पुट्ठिवेयणापाठो व्याख्यातोऽस्ति ॥ ४. पंडरोगो पभवइ स० ॥ ५–७. °धारणी° स० ॥ ८. °त्थुलुग° सा० ॥

(११०) हे आयुष्मान्! इस शरीर मे १६० शिराएँ नाभि से निकलकर मस्तिष्क की ओर जाती हैं जिन्हे रसहरणी कहते हैं। ऊर्ध्वगमन करने वाली (उन शिराओ से) चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा को क्रिया-शीलता प्राप्त होती हे और इनके उपघात से चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। हे आयुष्मान्! इस शरीर मे १६० शिराएं नाभि से निकल कर नीचे की ओर जाती हुई पैर के तल तक पहुँचती है, इनसे जघा को क्रिया-शीलता प्राप्त होती है। इन शिराओ के उपघात से सिर मे पीडा, अर्द्धसिर मे पीड़ा, मस्तक मे शूल और आँखें अन्धी हो जाती हैं। हे आयुष्मान्! इस शरीर मे १६० शिराएं नाभि से निकल कर तिरछी जाती है जो हाथ तल तक पहुँचती है। इनके निरूपघात से बाहु को क्रिया-शीलता प्राप्त होती है और इनके उपघात से पार्श्व वेदना, पृष्ठ वेदना, कुक्षिपीड़ा और कुक्षिशूल होता है। हे आयुष्मान्! इस मनुष्य की १६० शिराएं नाभि से निकलकर नीचे की ओर जाकर गुदा मे मिलती है। इनके निरूपघात से मल, मूत्र और वायु उचित मात्रा मे होते हैं और इनके उपघात से मूत्र, मल और वायु के निरोध मे (मनुष्य) बवासीर से क्षुब्ध हो जाते हैं और पीलिया नामक रोग हो जाता है।

(१११) हे आयुष्मान्! इस मनुष्य के कफ को धारण करने वाली २५ शिराएँ, पित्त को धारण करने वाली २५ शिराएँ और वीर्य को धारण करने वाली १० शिराएँ (होती हैं)। पुरुष के ७०० शिराएँ, स्त्री के तीस कम (अर्थात् ६७०) और नपुंसक के बीस कम (अर्थात् ६८० शिराएँ होती हैं)।

(११२) हे आयुष्मान्! इस मनुष्य के (शरीर मे) रक्त का वजन एक आढक,[1] वसा का आधा आढक, मस्तुलिङ्ग का (फुस्फुस) एक-प्रस्थ[2], मूत्र का एक आढक, पुरीस का एक प्रस्थ, पित्त का एक कुडव[3], कफ का एक कुडव, शुक्र का आधा कुडव (परिमाण होता है)। इनमे जो दोषयुक्त होता है उसमे वह परिप्रमाण अल्प भी होता है।

पचकोट्ठे पुरिसे, छक्कोट्ठा इत्थिया। नवसोए पुरिसे, इक्कारससोया इत्थिया। पच पेसीसयाइं पुरिसस्स, तीसूणाइ इत्थियाए, वीसूणाइं पडगस्स ॥११३॥

[सरीरस्स असुंदरत्तं]

अब्भंतरंसि कुणिमं जो (जइ) परियत्तेउ बाहिर कुज्जा।
तं असुइं दट्ठूणं सया वि जणणी दुगुछेज्जा ॥११४॥
माणुस्सय सरीरं [1]पूईयं मस-सुक्क-हड्डेणं।
परिसठवियं सोभइ अच्छायण-गंध-मल्लेणं ॥११५॥

इमं चेव य सरीर सीसघडीमेय-मज्ज-मंस-ऽट्ठिय-[2]मत्थुलिंग-सोणिय-वालुडय-चम्मकोस-नासिय-सिंघाणय-धीमलालयं अमणुण्णगं[3] सीसघडी-भजिय गलतनयणकण्णोट्ठ-गंड-तालुयं अवालुया[4]-खिल्लचिक्कण चिलि-चिलिय[5] दंतमलमइलं बीभच्छदरिसणिज्ज असलग-बाहुलग-अगुली-अगुट्ठग-नहसधिसघायसधियमिण बहुरसियागार नाल-खंधच्छिरा-अणेगण्हारुबहुध-मणीसधिनद्ध[6] पागडउदर-कवाल[7] कक्खनिक्खुड कक्खगकलियं दुरत अट्ठि-धमणिसताणसतय, सव्वओ समंता परिसवतं च रोमकूवेहिं, सयं असुइं, सभावओ [8]परमदुब्भिगधि, कालिज्जय-अत-पित्त-जर-हियय[9]-फोप्फस-फेफस-पिलिहोदर-गुज्झ-कुणिम-नवछिड्ड[10]-थिविथिविथिवितहियय दुरहिपित्त-सिंभ-मुत्तोसहायतण, सव्वतो दुरत, गुज्झोरु-जाणु-जघा-पायसघायसधियं असुइ कुणिमगधि, एव चिंतिज्जमाण वीभच्छदरिसणिज्ज अधुव अनियय असासय सडण-पडण-विद्ध सणधम्म, पच्छा व पुरा व अवस्सचइयव्वं, निच्छयओ सुट्ठु जाण, एय आइ-निहण, एरिस सव्वमणुयाण देह। एस परमत्थओ सभावो ॥११६॥

---

१. पूइयम मस° वृ०। पूईयमस व कडुयभडेण स० ॥ २ °त्थुलुग° सा० ॥ ३ °ण्णगऊहग सीस° स० ॥ ४. °या-खेल-खि° स० ॥ ५. °लियदतमल-मइल किंकारिय बीभ° स० पु० ॥ ६ °घिबद्ध सा० ७ °वाड कक्ख° स० पु० ॥ ८. °दुग्गघि सा० ॥ ९. °हियय-गोप्फस° स० पु० ॥ १०. °ड्ड-थिविथिवतहि° स० पु० ॥

(११३) पुरुष के शरीर मे पाँच कोष्ठक और स्त्री मे छः कोष्ठक (होते हैं)। पुरुष मे नौ स्रोत (निस्सरण छिद्र) और स्त्री मे ग्यारह स्रोत (होते हैं)। पुरुष के पाँच सौ पेशियाँ, स्त्री के तीस कम, (अर्थात् ४७०) नपुसक के बीस कम (अर्थात् ४८० पेशियाँ होती हैं)।

[शरीर की असुन्दरता]

(११४) यदि (शरीर के) भीतरी मास को परिवर्तित करके बाहर कर दिया जाय तो उस अशुचि को देखकर स्वय की माता भी घृणा करने लगेगी।

(११५) मनुष्य का शरीर मास, शुक्र और हड्डी से अपवित्र है परन्तु यह वस्त्र, गन्ध और माला द्वारा आच्छादित होने से शोभित होता है।

(११६) यह शरीर खोपड़ी, चर्बी, मज्जा, मास, अस्थि, मस्तुलिंग, रक्त, वालुण्डक (शरीर के अन्दर का एक अग) चर्मकोश, नासिका-मल और विष्टा आदि का घर (है)। यह खोपडी, नेत्र, कर्ण, ओष्ठ, कपोल, तालु आदि के अमनोज्ञ मलो से युक्त है। होठो का घेरा अत्यन्त लार से चिकना, (मुख) पसीने से युक्त और दात मल से मलिन, देखने मे बीभत्स (घृणास्पद) है। हाथ, अगुलियाँ, अगुठा और नखो की सधियो से यह जुडा हुआ (है)। यह अनेक तरलस्रावो का घर है। यह शरीर कधे की नसें, अनेक शिराओ एव बहुत सी सन्धियो से बधा हुआ है। (शरीर मे) कपाल (फूटे हुए घडे) के समान, प्रकट पेट सूखे वृक्ष के कोटर के समान व केशयुक्त अशोभनीय कुक्षि प्रदेश है, हड्डियो और शिराओ के समूह से युक्त इसमे सर्वत्र और सब ओर से रोमकूपो से स्वभाव से ही अपवित्र और घोर दुर्गन्ध युक्त पसीना निकलता रहता है। (इसमे) कलेजा, आँतडिया, पित्त, हृदय, फेफडा, प्लीहा, फुप्फुस, उदर, ये गुप्त मासपिण्ड और (मलस्रावक) नौ छिद्र होते है। इसमे थिव-थिव की आवाज (के रूप मे धड़कने वाला) हृदय (होता है)। यह दुर्गन्ध युक्त पित्त, कफ, मूत्र और औषधी का निवास स्थान (है)। गुह्य प्रदेश, घुटनें, जघा व पैरो के जोड से जुडा (यह शरीर) मासगन्ध से युक्त अपवित्र एव नश्वर है। इस प्रकार विचार करते हुए एव इसके

---

१. एक आढक लगभग ३ किलो ५०० ग्राम का होता है।

२. एक प्रस्थ लगभग ९०० ग्राम का होता है।

३. एक कुडव भी लगभग ९०० ग्राम का होता है।

[सरीरादिस्स असुभत्तं]

सुक्कम्मि सोणियम्मि य संभूओ जणणिकुच्छिमज्झम्मि ।
त चेव अमेज्झरस नव मासे [1]घुटिउ सतो ॥११७॥

जोणीमुहनिप्फिडिओ थणगच्छीरेण वड्ढिओ [2]जाओ ।
पगईअमेज्झमइओ किह देहो धोइउ [3] सक्को ? ॥११८॥

हा[4] ! असुईसमुप्पन्नया य, निग्गया य तेण चेव य वारेण ।
सत्तया मोहपसत्तया, रमति तत्थेव असुइदारयम्मि ॥११९॥

(इत्थीसरीरनिव्वेओवएसो)

किह ताव घरकुडीरी कईसहस्सेहिं अपरित्तंतेहिं ।
वन्निज्जइ असुइबिलं जघण ति सकज्जमूढेहिं ? ॥१२०॥

रागेण न जाणंती य वराया कलमलस्स निद्धमणं ।
ता[5] णं परिणंदती फुल्ल नीलुप्पलवण व ॥१२१॥

[6]कित्तियमित्त वण्णे ? अमिज्झमइयम्मि वच्चसघाए ।
रागो हु न कायव्वो विरागमूले सरीरम्मि ॥१२२॥

किमिकुलसयसकिण्णे असुइमचोक्खे असासयमसारे ।
सेयमलपोच्चडम्मी निव्वेय वच्चह सरीरे ॥१२३॥

दतमल-कण्णगूहग-[7]सिंघाणमले य लालमलबहुले ।
एयारिसबीभच्छे दुगुछणिज्जम्मि को रागो ? ॥१२४॥

---

१ घोटिओ स⁰ स० ॥ २ माउ सं० ॥ ३. ⁰इय सक्का स० ॥ ४. हा ! असुइसमुप्पन्ना य निग्गया जेण चेव दारेण । सत्ता मोहपसत्ता रमति तत्थेव असुइदारम्मि ॥ इतिरूपा गाथा सा० वृ० ॥ ५. तो ण परियदती सं० ॥ ६ केत्तियमेत्तो छिन्नो ? अमेज्झ⁰ सं० ॥ ७. ⁰घाणग पित्तलालमलबहुले । एयारिसअसुईदुव्वलम्मि असुइम्मि को रागो ? ॥ स० ॥

बीभत्स रूप को देख करके यह जानना चाहिए कि यह शरीर अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सडन-गलन और विनाश धर्मा तथा पहले या बाद मे अवश्य ही नष्ट होने वाला है। यह आदि और अन्त वाला है। सब मनुष्यो की देह ऐसी ही होती है। यह (शरीर) ऐसे ही स्वभाव वाला है।

(शरीर आदि का अशुभत्त्व)

(११७) माता की कुक्षि मे शुक्र और शोणित मे उत्पन्न उसी अपवित्र रस को पीने के लिए (यह जीव) नौ मास तक (गर्भ मे) रहता है।

(११८) योनिमुख से बाहर निकला हुआ, स्तन पान से वृद्धि को प्राप्त हुआ, स्वभाव से ही अशुचि और मल युक्त इस शरीर को कैसे धोया जाना शक्य हैं ? (अर्थात् इसे स्नान आदि से कैसे शुद्ध किया जा सकता है ?)

(११९) हा, दुःख ! अशुचि मे उत्पन्न जिससे वह प्राणी बाहर निकला है, काम क्रीडा मे आसक्ति के कारण उसी अशुचि योनि-द्वार मे रमण करता है।

(स्त्री शरीर विरक्ति उपदेश)

(१२०) तब अशुचि से युक्त स्त्री के कटि भाग का हजारो कवियो के द्वारा अभ्रान्त भाव से क्यो वर्णन किया जाता है ? (तब उत्तर मे कहते हैं कि) इस प्रकार वे स्वार्थवश मूढ हो रहे हैं।

(१२१) वे बेचारे राग के कारण (यह कटिभाग) अपवित्र मल की थैली है, यह नही जानते हैं। इसी कारण (उस कटि भाग को) विकसित नील कमल के समूह के समान मानकर उसका वर्णन करते हैं।

(१२२) और कितना वर्णन करें, प्रचुर मेद युक्त, परम अपवित्र, विष्ठा की राशि और घृणा योग्य शरीर मे मोह नही करना चाहिए।

(१२३) सैकडो कृमि-कूलो से युक्त, अपवित्र मल से व्याप्त, अशुद्ध, अशाश्वत, सार रहित, दुर्गन्ध युक्त स्वेद और मल से मलिन, इस शरीर मे (तुम) निर्वेद को प्राप्त करो।

(१२४) (यह शरीर) दाँत के मल, कान के मल, नासिका के मल (श्लेष्म) और मुख की प्रचुर लार से (युक्त है) इस प्रकार के बीभत्स एव घृणित शरीर के प्रति कैसा राग ?

को सडण-पडण-विकिरण-विद्ध सण-चयण-मरणधम्मम्मि ।
देहम्मि[1] अहीलासो कुहिय-कठिणकट्ठभूयम्मि ? ॥१२५॥

[2]कांग-सुणगाण भक्खे किमिकुलभत्ते य वाहिभत्ते य ।
देहम्मि [3]मच्चुभत्ते सुसाणभत्तम्मि को रागो ? ॥१२६॥

असुई अमेज्झपुन्न कुणिम-कलेवरकुडि परिसवंति[4] ।
आगंतुयसठविय[5] नवछिद्दमसासय जाण ॥१२७॥

पेच्छसि मुह सतिलय [6]सविसेस रायएण अहरेण ।
सकडक्ख सवियार[7] तरलच्छि जोव्वणत्थीए ॥१२८॥

पिच्छसि[8] बाहिरमट्ठ, न पिच्छसी उज्झर कलिमलस्स ।
मोहेण[9] नच्चयतो सीसघडीकजिय पियसि ॥१२९॥

सीसघडीनिग्गाल ज निट्ठूहसी दुगुछसी ज च ।
त चेव रागरत्तो मूढो अइमुच्छिओ पियसि ॥१३०॥

पूइयसीसकवाल पूइयनास च पूइदेह च ।
पूइयछिड्डुविछिड्डु पूइयचम्मेण य पिणद्ध ॥१३१॥

[10]अजणगुणसुविसुद्ध ण्हाणुव्वट्टणगुणेहिं सुकुमाल ।
पुप्फुम्मीसियकेस जणेइ[11] बालस्स त राग ॥१३२॥

ज सीसपूरओ त्ति य पुप्फाइ भणति मदविन्नाणा ।
पुप्फाइ चिय ताइ सीसस्स य पूरय [12]सुणह ॥१३३॥

---

१. °म्मि य अभिला° स० ॥ २ को काक-सुणगभक्खे पु० ॥ ३. वृत्तिकृता भच्छभत्तो पाठो वृत्तौ स्वीकृतोऽस्ति, मच्चुमत्तो इति पाठस्तु पाठान्तरतया न्यस्तोऽस्ति ॥ ४ °सवत स० ॥ ५. °ठवण नवछिडम° स० ॥ ६. सविकार राइएण स० ॥ ७. °याल तरलच्छ जो° सं० ॥ ८. पेच्छह बाहिरमट्ठ न पेच्छहा उ° स० ॥ ९ °ण बुब्बयंतो स० ॥ १० अन्नज्ज-गुणसुबद्ध सं० । अजणगुणसुविबद्ध पु० ॥ ११. जणयइ बा° सं० । जणई बा° पु० ॥ १२. मुणह सा० पु० ॥

(१२५) सडन, गलन, विनाश, विध्वसन, दु.खकर एव मरण धर्मा सडे हुए काष्ठ के समान इस शरीर की कौन अभिलाषा (रखेगा) ?

(१२६) (यह शरीर) कौओ, कुत्तो, कीडे मकोडो, मछलियो और श्मशान मे रहने वाले (गिद्ध आदि प्राणियो) का भोज्य तथा व्याधियो से ग्रस्त है, ऐसे शरीर मे कौन राग (करेगा) ?

(१२७) (यह शरीर) अपवित्र, विष्ठा से पूरित तथा मास और हड्डियो का घर है। इससे मल स्राव होता रहता है। माता पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न, नौ छिद्रो से युक्त (इस शरीर को) अशाश्वत जानो। (विशेष–पति या पत्नी जीवन मे आते हैं, अतः वे आगन्तुक हैं और उनके द्वारा गर्भ सस्थापित है, अतः वह गर्भ से निर्मित शरीर आगन्तुक सस्थापित कहा गया है।)

(१२८) (तुम) तिलक से युक्त, विशेष रूप से रक्ताभ ओठो वाली युवती के मुख को विकार भाव से एव कटाक्ष सहित चचल नेत्रो से देखते हो।

(१२९) (तुम उनके) बाह्य रूप को देखते हो किन्तु भीतर स्थित दुर्गन्धित मल को नही देखते हो। मोह से ग्रसित होकर नाचते हो और कपाल के अपवित्र रस (लार-श्लेष्मादि) को (चुम्बन आदि से) पीते हो।

(१३०) कपाल से उत्पन्न रस (लार और श्लेष्म), जिसको (तुम स्वय) थूकते हो (और) घृणा करते हो, उसी को अनुराग ने रत होकर अत्यन्त आसक्ति से पीते हो।

(१३१) शीर्ष-कपाल अपवित्र है, नाक अपवित्र है, विविध अग अपवित्र है, छिद्र विछिद्र भी अपवित्र है, (यहाँ तक कि यह शरीर भी) अपवित्र चर्म से ढका हुआ है।

(१३२) अञ्जना से निर्मल, स्नान-उद्वर्तन से सस्कारित, सुकुमाल पुष्पो मे सुशोभित केशराशि से युक्त (स्त्री का मुख) अज्ञानी को राग उत्पन्न करता है।

(१३३) अज्ञान बुद्धि वाले जिन फूलो को मस्तक का आभूषण कहते है वे केवल फूल ही है। मस्तक का आभूषण (क्या है, उसे) सुनो!

मेदो वसा य रसिया [१]खेले सिंघाणए य छुभ एयं ।
अह सीसपूरओ भे नियगसरीरम्मि साहीणो ॥१३४॥

सा किर दुप्पडिपूरा वच्चकुडी दुप्पया नवच्छिद्दा ।
उक्कडगंधविलित्ता बालजणोऽइमुच्छिय[२] गिद्धो ॥१३५॥

जं पेम्मरागरत्तो अवयासेऊण गूह-मुत्तोलिं ।
दंतमलचिक्कणंगं सीसघडीकंजिय पियसि ॥१३६॥

दंतमुसलेसु[3] गहणं गयाण, मंसे य ससय-मीयाण ।
वालेसु य चमरीणं, चम्म-नहे दीवियाण[४] च ॥१३७॥

पूइयकाए य इहं [५]चवणमुहे निच्चकालवीसत्थो[६] ।
आइक्खसु सब्भाव किम्हि सि गिद्धो तुमं मूढ ! ? ॥१३८॥

दंता वि अकज्जकरा, वाला वि विवड्ढमाणवीभच्छा ।
चम्मं पि य बीभच्छं, भण किम्हि सि तं गओ राग ? ॥१३९॥

सिंभे पित्ते मुत्ते गूहम्मि वसाए[७] दंतकुंडीसु ।
भणसु किमत्थं[८] तुज्झ असुइम्मि वि वड्ढिओ रागो ? ॥१४०॥

[९]जंघट्ठियासु ऊरू पइट्ठिया, तट्ठिया [१०]कडीपिट्ठी ।
[११]कडिपट्ठिवेढियाइं अट्ठारस पिट्ठिअट्ठीणि ॥१४१॥

दो अच्छिअट्ठियाइ, सोलस गीवट्ठिया मुणेयव्वा ।
पिट्ठीपइट्ठियाओ बारस किल पंसुली हुंति ॥१४२॥

[१२]अट्ठियकढिणे सिर-ण्हारुबंधणे मंस-चम्मलेवम्मि ।
विट्ठाकोट्ठागारे को वच्चघरोवमे रागो ? ॥१४३॥

जह नाम वच्चकूवो निच्चं [13]भिणिभिणिभिणंतकायकली[१४] ।
किमिएहिं [१५]सुलुसुलायइ सोएहि य पूइअं वहइ ॥१४४॥

---

१ खेलो सिंघाणओ य थुहओ य स० ॥ २ °च्छिओ गि° पु० ॥ ३. °सु गेही गयाण मसे य सस-मियाईण स० ॥ ४ दीवियाईणं ॥१३७ ॥ सं० ॥ ५ नवण° पु० । नत्यण° स० ॥ ६. °लबीभच्छे सं० ॥ ७. °ए अत° सं० ॥ ८ °मट्ठ तुज्झ असुयम्मि स० ॥ ९. ज पिंडियासु स० पु० ॥ १० कडीअट्ठी स० ॥ ११ कडिअट्ठिविछि (? च्चि) या° स० ॥ १२. °कडणे सि° स । °कठोरसि° पु० ॥ १३ , °भणत° वृ० ॥ १४. °यवलो स० ॥ १५ सुलसु° सा० पु० ॥

(१३४) चर्बी, वसा, रसिका (पीव), कफ, श्लेष्म, मेद—ये सिर के भूषण है, ये निज शरीर के स्वाधीन है। अर्थात् वह इन्ही से निर्मित है।

(१३५) (यह शरीर) भूषित होने के अयोग्य है, विष्ठा का घर है, दो पैर और नौ छिद्रो से युक्त है, तीव्र दुर्गन्ध से भरा हुआ है। (जिसमे) अज्ञानी मनुष्य अत्यन्त मूर्छित और आसक्त होता है।

(१३६) कामराग से रगे हुए (तुम) गुप्त अगो को प्रकट करके दाँतो के चिकने मल का और शीर्ष घटिका (खोपडी) से निसृत काञ्जि अर्थात् विकृत रस को पीते हो।

(१३७) हाथियो का दत-मूसलो के लिए, खरगोश और मृगो का मास के लिए, चमरी-गाय का बालो के लिए और चीते का चर्म और नाखून के लिए ग्रहण किया जाता है (अर्थात् सबका शरीर कुछ न कुछ काम आता है, किन्तु मनुष्य का शरीर किसी के काम का नही है)।

(१३८) हे मूर्ख! यह शरीर दुर्गन्ध युक्त और मरण स्वभाव वाला है। इसमे नित्य विश्वास करके तुम क्यो आसक्त हो रहे हो? इसका स्वभाव तो कहो?

(१३९) दाँत भी किसी कार्य के नही हैं, बढे हुए बाल भी घृणा के योग्य हैं, चर्म भी बीभत्स है फिर कहो! तुम किसमे राग रखते हो?

(१४०) कफ, पित्त, मूत्र, विष्ठा, वसा, दाढो आदि (अपवित्र वस्तुओ मे) कहो! किसके लिए तुम्हारे द्वारा राग किया जा रहा है।

(१४१) जघा की हड्डियों के ऊपर ऊरू स्थित है और उसके ऊपर कटि-भाग स्थित है। कटि के उपर पृष्ठ-भाग स्थित है। पृष्ठ भाग (पीठ) मे १८ हड्डियाँ होती हैं।

(१४२) दो आँख की हड्डियाँ, सोलह गर्दन की हड्डियाँ जाननी चाहिए। पीठ मे बारह पसलियाँ स्थित होती हैं।

(१४३) शिरा और स्नायुओ से बँधा कठोर हड्डियो का यह ढाँचा, मास और चमडे मे लिपटा हुआ है। (यह शरीर) विष्ठा का घर है। ऐसे मल के घर मे कौन राग करेगा?

(१४४) जैसे विष्ठा के कुँए के समीप कौए मँडराते रहते है, उसमे कृमियो के द्वारा सुल-सुल शब्द होता रहता है और स्रोतो से दुर्गन्ध निकलती रहती है (मृत होने पर शरीर की भी यही दशा होती है)।

उद्धियनयणं खगमुहविकट्टिय[1] विप्पइन्नबाहुलयं ।
[2]अंतविकड्ढियमालं [3]सीसघडीपागडियघोरं ॥१४५॥

भिणिभिणिभिणंतसद्दं[4] विसप्पिय [5]सुलुसुलेंतमंसोडं ।
मिसिमिसिमिसंतकिमियं [6]थिविथिविथिवियतबीभच्छं ॥१४६॥

पागडियपासुलीयं विगरालं सुक्कसंधिसंघायं ।
पडियं [7]निव्वेवणयं सरीरमेयारिसं [8]जाण ॥१४७॥

वच्चाओ असुइतरे नवहिं सोएहिं परिगलंतेहिं ।
आमगमल्लगरूवे निव्वेय वच्चह सरीरे ॥१४८॥

दो हत्था दो पाया सीसं उच्चपियं कवंधम्मि ।
[9]कलमलकोट्ठागारं परिवहसि दुयादुयं वच्चं ॥१४९॥

तं च किर रूववंतं वच्चतं रायमग्गमोइन्नं ।
परगंधेहिं सुगंधयं मन्नंतो अप्पणो गंधं ॥१५०॥

पाडल-चंपय-मल्लिय-[10]अगुरुय-चंदण-तुरुक्कवामीसं ।
गंधं समोयरंतं मन्नंतो अप्पणो गंधं ॥१५१॥

[11]सुहवाससुरहिगंधं च[12] ते मुहं, अगुरुगंधियं अंगं ।
केसा ण्हाणसुगंधा, कयरो ते अप्पणो गंधो ? ॥१५२॥

अच्छिमलो कन्नमलो खेलो सिंघाणओ य पूओ य ।
असुई मुत्त-पुरीसो, एसो ते अप्पणो गंधो ॥१५३॥

---

१. °कड्ढिय° सा० पु० ॥ २. °कड्ढिय° सा० पु० ॥ ३ °घडियपा° सं० ॥ ४. °भणत° वृ० ॥ ५. सुलसुलत° सा० । चुलसलित° पु० ॥ ६. °थिविय° पु० वृ० ॥ ७. निच्चेयणय वृ० ॥ ८. जाणे वृपा० ॥ ९. कलिम° सा० ॥ १०. °गुरू-च° स० ॥ ११. मुहवाससुरहिगंध वातमुह सा० । लिपिविकारजोऽयमशुद्ध पाठभेद ॥ १२ अत्र वृत्तिकृता वातमुहं इति लिपिविकारज पाठो व्याख्यातोऽस्ति ॥

(१४५) (मृत शरीर के) नेत्र को पक्षी चोंच से काटते हैं, लता की तरह भुजा फैली रहती है, आँत बाहर निकाल ली जाती है और खोपड़ी भयकर (दिखाई पडती) है।

(१४६) मृत शरीर पर मक्खियाँ भिन-भिन शब्द करती रहती है। सड़े हुए मास से सुल-सुल की आवाज निकलती रहती है, उसमे उत्पन्न कृमि समूह से मिस-मिस की आवाज और आँतडियो से थिव-थिव शब्द होता रहता हैं। इस प्रकार यह बहुत ही बीभत्स दिखाई देता है।

(१४७) (मरने के बाद) प्रकट पसलियो वाले विकराल, सूखी सन्धियो से यक्त, चेतना रहित शरीर की अवस्था को जानो।

(१४८) नव-द्वारो से अशुचि को निकालने वाले, गले हुए कच्चे घडे के समान इस शरीर के प्रति निर्वेद (वैराग्य) भाव धारण करो।

(१४९) दो हाथ, दो पैर और सिर धड से जुडे हुए हैं। यह मलिन मल का कोष्ठागार है। इस विष्ठा को तुम क्यो ढोते फिरते हो।

(१५०) ऐसे रूपवाले (शरीर को) राजपथ पर अवतीर्ण देखकर (प्रसन्न होते हो) और पर-गन्ध (अन्यपदार्थों की गन्ध) से सुगन्धित गध को अपनी गन्ध मानते हो।

(१५१) (यह मनुष्य) गुलाब, चम्पा, चमेली, अगर, चन्दन एव तरूष्क की गन्ध को अपनी गन्ध मानता हुआ प्रसन्न होता है।

(१५२) तेरा मुख मुखवास की गध से सुवासित है, अग प्रत्यग अगर की गन्ध से युक्त है। केश स्नानादि के समय लगाये गये सुगधित द्रव्यों से सुगधित है, तो बताओ तुम्हारी अपनी गन्ध क्या है ?

(१५३) हे पुरुष! आँखो का मल, कान का मल, नासिका का मल, श्लेष्म, अशुचि और त्र-ये ही तो तेरी अपनी गध है।

(इत्थिसरीर-सभावाइ पडुच्च वेरग्गोवएसो)

जाओ चिय इमाओ इत्थियाओ अणेगेहिं [1]कइवरसहस्सेहिं विविहपासपडिबद्धेहिं कामरागमोहिएहिं[2]वन्नियाओ ताओ विय एरिसाओ, त जहा—पगइविसमाओ ▷ [3]पियरुसणाओ कतियवचडुप्परुन्नातो [4]अथक्कहसिय-भासिय-विलास-वीसभ-पचू (च्च) याओ अविणयवातोलीओ[5] मोहमहावत्तणीओ-विसमाओ ◁ पियवयणवल्लरीओ कइयवपेमगिरितडीओ अवराहसहस्सघरिणीओ ४, पभवो सोगस्स, विणासो बलस्स, सूणा पुरिसाण, नासो लज्जाए, सकरो अविणयस्स, निलओ नियडीण १० [6]खाणी वइरस्स, सरीरं सोगस्स, भेओ मज्जायाणं, [7]आसमो रागस्स, निलओ दुच्चरियाणं १५, माईए [8]सम्मोहो, खलणा नाणस्स, चलण सीलस्स, विग्घो धम्मस्स. अरी साहूण २०, दूसण आगारपत्ताण, आरामो कम्मरयस्स, फलिहो मुक्खमग्गस्स, भवणं दारिद्दस्स २४ ॥१५४॥

अवि आइं[9] ताओ आसीविसो विव कुवियाओ, मत्तगओ विव मयणपरव्वसाओ, वग्घी विव दुट्ठहिययाओ, तणच्छन्नकूवो विव अप्पगासहिययाओ, मायाकारओ विव उवयारसयबधणपओत्तीओ, [10]आयरियसविध पिव दुग्गेज्झसब्भावाओ ३०, फुफुया विव अंतोदहणसीलाओ, नग्गयमग्गो विव अणवट्ठियचित्ताओ, अंतोदुट्ठवणो विव कुहियहिययाओ, कण्हसप्पो विव अविस्ससणिज्जाओ, सघारो विव छन्नमायाओ, सझब्भरागो विव मुहुत्तरागाओ, समुद्दवीचीओ विव [11]चलस्सभावाओ, मच्छो विव दुप्परियत्तणसीलाओ, वानरो विव [12]चलचित्ताओ, मच्चू विव निव्विसेसाओ ४०,

---

१. कयवर° पु० ॥ २ °गमोहेंहि सा० पु० ॥ ३ ▷ ◁ एतच्चिह्नमध्यवर्त्ती पाठो न व्याख्यातो वृत्तौ ॥ ४. अवक्कहसिय-भासिय-विलाम-वीसभभूयाओ सा० ॥ ५. °वातुली° सा० पु० ॥ ६ खणी वृ० । खाणी नरयस्स सं० ॥ ७. आसाओ वृ० । आसओ इति वृपा० ॥ ८ समूहो वृ० । ९ यायं ताओ सं० ॥ १०. आयरिसबिंवं पिव सा० पु० ॥ ११-१२. चवल° स० ॥

(स्त्री शरीर-स्वभाव की उपेक्षा और वैराग्य का उपदेश)

(१५४) काम-राग और मोहरूपी विविध पाशो से बँधे हुए, हजारो श्रेष्ठ कवियो के द्वारा इन स्त्रियो की (प्रशसा मे) बहुत कुछ कहा गया है। (वस्तुत. वे ऐसी नही हैं) उनका स्वरूप तो इस प्रकार का है :—

स्त्रियाँ (१) स्वभाव से कुटिल, (२) प्रिय वचनो की लता, (३) प्रेम करने मे पहाड की नदी की तरह कुटिल, (४) हजारो अपराधो की स्वामिनी, (५) शोक उत्पन्न कराने वाली, (६) बल का विनाश करने वाली, (७) पुरुषो के लिए वधस्थान, (८) लज्जा का नाश करने वाली, (९) अविनय की राशि, (१०) पाखण्ड का घर, (११) शत्रुता की खान, (१२) शोक का शरीर अर्थात् शोक की धारक, (१३) मर्यादा को तोडने वाली, (१४) राग का घर, (१५) दुराचारियो का निवासस्थान, (१६) सम्मोहन की माता, (१७) ज्ञान को नष्ट करने वाली, (१८) ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाली, (१९) धर्म मे विघ्न रूप, (२०) साधुओ की शत्रु, (२१) आचार सम्पन्न के लिए कलंक रूप, (२२) कर्म रूपी रज का विश्राम गृह, (२३) मोक्ष मार्ग की अर्गला और, (२४) दारिद्रता का आवास है।

(१५५) वे स्त्रियाँ (२५) कुपित होने से जहरीले सर्प के समान, (२६) काम के वशीभूत होने से मदमत्त हाथी की तरह, (२७) दुष्ट हृदया होने से व्याघ्री की तरह, (२८) कालिमा युक्त हृदय होने से तृण से आच्छादित कूप के समान, (२९) जादूगर के समान सैकडो उपचार से आबद्ध कर लेने वाली, (३०) दुर्ग्राह्य सद्भाव होने पर भी आदर्श की प्रतिमा, (३१) शील को जलाने मे वनकण्डे की आग की तरह, (३२) अस्थिर चित्त होने से पर्वत-मार्ग की तरह अनवस्थित, (३३) अन्तरग व्रण (घाव) के समान कुटिल हृदय, (३४) काले सर्प की तरह अविश्वसनीय, (३५) छल छद्म युक्त होने से प्रलय की तरह, (३६) सध्या की लालिमा की तरह क्षणिक प्रेम करने वाली, (३७) समुद्र की तरगो की तरह चपल स्वभाव वाली, (३८) मछली की तरह दुष्परिवर्तनीय, (३९) चचलता मे वन्दर की तरह, (४०) मृत्यु की तरह कुछ भी शेष नही रखने वाली, (४१) काल की तरह क्रूर, (४२) वरुण की तरह (काम) पाश रूपी हाथ वाली, (४३) पानी की तरह निम्नानुगामिनी, (४४) कृपण

कालो विव निरणुकपाओ, वरुणो विव पासहत्थाओ, सलिलमिव निन्नगामिणीओ, किविणो विव उत्ताणहत्थाओ, नरओ विव उत्तासणिज्जाओ खरो विव दुस्सीलाओ, दुट्ठस्सो विव दुद्दमाओ, वालो इव मुहुत्तहियायाओ, अधकारमिव दुप्पवेसाओ, विसवल्ली विव अणल्लियणिज्जाओ ५०, दुट्ठगाहा इव वावी अणवगाहाओ, ठाणभट्ठो विव इस्सरो अप्पससणिज्जाओ, किंपागफलमिव मुहमहुराओ, रित्तमुट्ठी विव वाललोभणिज्जाओ, मसपेसीगहणमिव सोवद्दवाओ जलियचुडली विव अमुच्चमाणडहगसीलाओ, अरिट्ठमिव दुल्लघणिज्जाओ, कूडकरिसावणो विव कालविसवायणसीलाओ, चडसीलो विव दुक्खरक्खियाओ, अइविसायाओ ६० दुगुछियाओ [1]दुरुवचाराओ अगभीराओ अविस्ससणिज्जाओ अणवत्थियाओ दुक्खरक्खियाओ दुक्खपालियाओ अरतिकराओ कक्कसाओ दढवेराओ ७० रूव-सोहग्गमउम्मत्ताओ भुयगगइकुडिलहिययाओ [2]कतारगइट्ठाणभूयाओ कुल-सयण-मित्तभेयणकारियाओ परदोसपगासियाओ [3]कयग्घाओ बलसोहियाओ [4]एगतहरणकोलाओ चचलाओ [5]जाइयभडोवगारो विव मुहरागविरागाओ ८० ॥१५५॥

अवि याइ ताओ [6]अंतरं भंगसयं, अरज्जुओ पासो, अदारुया अडवी, अणालस्सनिलओ, [7]अइक्खा वेयरणी, अनामिओ वाही, अवियोगो विप्पलावो, अरूओ उवसग्गो, रइवंतो [8]चित्तविब्भमो, सव्वगओ दाहो ९०, [9]अणब्भपसूया वज्जासणी, असलिलप्पवाहो[10] समुद्दरओ ९२ ॥ १५६ ॥

---

१. दुरूव° स० । दुरुव-चराओ सा० ॥ २. °गतिट्ठाणभूताते स० ॥ ३. कइग्घाओ स० ॥ ४ °तहिरन्नको° स० ॥ ५. जोइभडोवरागो विव वृ० । जोइभडो विव उवरागाओ वृपा० । जच्चभडोवरागो विवि सापा० ॥ ६. अतरगभग° स० वृपा० ॥ ७. अतिक्खवे° स० । अइक्खवे° वृ० ॥ ८. °त्तब्भमो वृ० ॥ ९ अणब्भया व° वृ० । अणब्भया असणो इति अप्पसूया वज्जाऽसणी इति अप्पसूया वज्जा सुणी इति च पाठभेदत्रय वृत्तौ ॥ १०. °लप्पलावो सं० वृपा० ॥

की तरह उत्ताण हस्त, (४५) नरक के समान डरावनी, (४६) गर्दभ की तरह दुःशील वाली, (४७) दुष्ट घोडे की तरह दुर्दमनीय, (४८) बालक के समान क्षण मे प्रसन्न और क्षण मे रुष्ट होने वाली, (४९) अन्धकार की तरह दुष्प्रवेश, (५०) विषलता को तरह आश्रय के अयोग्य, (५१) कुवें मे आक्रोश से अवगाहन करने वाले दुष्ट मगर की तरह, (५२) चारित्र से भ्रष्ट आचार्य की तरह प्रशसा के अयोग्य, (५३) किंपाकफल की तरह पहले अच्छी लगने वाली और बाद मे कटु फल देने वाली, (५४) बालक को ललचाने वाली खाली मुट्ठी की तरह निस्सार, (५५) मासपिंड को ग्रहण करने की तरह उपद्रव पैदा करने वाली, (५६) जले हुए तृण की पूली की तरह नही छूटे हुए मान और दग्ध शील वाली, (५७) अरिष्ट की तरह दुर्लंघनीय, (५८) कपट-कार्षापण (खोटे सिक्के) की तरह समय पर शील को ठगने वाली, (५९) क्रोधी की तरह कष्ट से रक्षित, (६०) अत्यन्त विषाद वाली, (६१) निन्दित, (६२) दुरुपचारा, (६३) अगभीर, (६४) अविश्वसनीय, (६५) अनवस्थित, (६६) दुःख से रक्षित, (६७) दु ख से पालित, (६८) अरतिकर, (६९) कर्कश, (७०) दृढ वैर वाली (७१) रूप ओर सौभाग्य से उन्मत, (७२) साँप की गति की तरह कुटिल हृदय वाली, (७३) अटवी मे यात्रा करने और उसमे ठहरने की तरह भय उत्पन्न कराने वाली, (७४) कुल, परिवार और मित्र मे फूट डालने वाली, (७५) दूसरे के दोषो को प्रकाशित करने वाली, (७६) कृतघ्न, (७७) वीर्य का नाश करने वाली, (७८) कोल की तरह एकान्त मे हरण करने वाली, (७९) चचल और (८०) अग्नि से रक्त वर्ण हुए घडे के समान रक्ताभ अधरो से राग उत्पन्न कराने वाली होती हैं।

(१५६) पुन. वे स्त्रियाँ (८१) अन्तरग मे भग्नशत हृदय वाली, (८२) बिना रस्सी का बन्धन, (८३) बिना वृक्ष का जगल, (८४) अग्नि-निलय, (८५) अदृश्य वैतरणी, (८६) असाध्य बीमारी, (८७) बिना वियोग के ही प्रलाप करने वाली, (८८) अनभिव्यक्त उपसर्ग, (८९) रति क्रीडा मे चित्त-विभ्रम करने वाली, (९०) सर्वांग जलाने वाली, (९१) बिना मेघ के ही वज्रपात करने वाली, (९२) जल शून्य प्रवाह के समान और समुद्र के समान निरन्तर गर्जन (रव) करने वाली (होती है)।

अवि याइ तासि इत्थियाण अणेगाणि नामनिरुत्ताणि—पुरिसे कामरागप्पडिवद्धे नाणाविहेहिं उवायसयसहस्सेहिं वह-बंधणमाणयति पुरिसाणं नो अन्नो एरिसो अरी अत्थि त्ति नारीओ, त जहा—नारीसमा न नराण अरीओ नारीओ १। नाणाविहेहिं कम्मेहिं सिप्पयाइएहिं[1] पुरिसे मोहति त्ति महिलाओ २। पुरिसे मत्ते करेति त्ति पमयाओ ३। महत कलिं जणयति त्ति महिलियाओ ४। 'पुरिसे हावभावमाइएहिं[2] रमति त्ति रामाओ ५। पुरिसे अगाणुराए करेति त्ति अगणाओ ६। नाणाविहेसु जुद्धभडणसगामाऽडवीसु मुहारणगिण्हण-सीउण्हदुक्ख[3]-किलेसमाइएसु पुरिसे लालति त्ति ललणाओ ७। पुरिसे जोग-निओएहिं वसे [4]ठाविंति त्ति जोसियाओ ८। पुरिसे नाणाविहेहिं भावेहिं [5]वण्णिंति त्ति वणियाओ ९॥ १५७॥

काई पमत्तभावं, काई पणय सविब्भम, काई [6]ससद्द सासि व्व ववहरति, काई [7]सत्तु व्व, रोरो इव काई पयएसु पणमति, काई उवणएसु उवणमति, [8]काई कोउयनम्म ति काउ सुकडक्खनिरिक्खिएहिं सविलासमहुरेहिं उवहसिएहिं [9]उवगूहिएहिं [10]उवसद्देहिं गुरुगदरिसणेहिं भूमिलिहण[11] विलिहणेहिं चआरुहण-नट्टणेहि य बालयउवगूहणेहिं च [12]अगुलीफोडणथणपीलणकडितडजायणाहिं तज्जणाहिं च॥ १५८॥

अवि याइ ताओ पासो व ववसितु जे, पंको व्व खुप्पिउ जे, मच्चु व्व मारेउ जे, अगणि व्व डहिउ जे, असि व्व छिज्जिउ जे॥ १५९॥

---

१. °याईहि मोहिंति त्ति स०॥ २ °माईहिं स०॥ ३ °क्ख-भुक्ख-कि° स०। क्ख-सुक्ख-कि° पु०॥ ४ ठावयति स०॥ ५. विण्णेंति त्ति स०॥ ६. सस व्व साभि व्व स०॥ ७ सत्तू व स०॥ ८. काओ स०॥ ९ अवगू° पु०॥ १०. उच्चस° स०॥ ११. °ण-वियभणेहिं स० पु०॥ १२. अगुलीताडण- थण° वृपा०॥

(१५७) यहाँ उन स्त्रियो की अनेक नाम निर्युक्तियाँ की जाती हैं। लाखो उपायो द्वारा और नाना प्रकार से पुरुषो की कामासक्ति को बढाने वाली तथा उसे वध और बधन का भाजन बनानेवाली नारी के समान पुरुष का कोई अन्य अरि (शत्रु) नही है इसलिए उसकी नारी आदि नियुक्तियाँ इस प्रकार हैं :—उसके समान पुरूष का दूसरा कोई अरि (शत्रु) नही है इसलिए वह 'नारी' कही जाती है, नाना प्रकार के कर्मो और शिल्प से पुरूषो को मोहित करती है इसलिए 'महिला' है, पुरुष को मत्त करती है इसलिए वह 'प्रमदा' है। महान् कलह को उत्पन्न कराती है इसलिए 'महिलिका' और हाव-भाव द्वारा पुरुष को रमण कराती है इसलिए वह 'रामा' कही जाती है। पुरुष को अपने अगो मे राग उत्पन्न कराती है इसलिए वह अङ्गना है। अनेक प्रकार के युद्ध, कलह, सग्राम, अटवी मे भ्रमण, बिना प्रयोजन ऋण लेना, सर्दी गर्मी के दु.ख और क्लेश उठाना आदि कार्यो मे वह पुरुष को प्रवृत्त करती है इसलिए वह 'ललना' कही जाती है। योग-नियोग द्वारा पुरुष को वश मे करने के कारण 'योषित' तथा नाना प्रकार के भावो, द्वारा पुरुष की वासना को उद्दीप्त करती है इसलिए उसे 'वनिता' कहा जाता है।

(१५८) कोई स्त्री प्रमत्त भाव को, कोई प्रणय-विभ्रम को और कोई श्वास रोगी की तरह शब्द व्यवहार करती है। कोई शत्रु की तरह होती है और कोई रो-रो कर पैरो मे प्रणाम करती है। कोई स्तुति को करती है, कोई कुतुहल, हास्य, और कटाक्षपूर्वक देखती है। कुछ स्त्रियाँ विलासयुक्त मधुर वचनो से, कुछ मुस्कानयुक्त चेष्टाओ के द्वारा, कुछ आलिगन द्वारा, कुछ सीत्कार के शब्द द्वारा, कुछ गुह्यागो के प्रदर्शन के द्वारा, कुछ भूमि पर लिखकर अथवा चिह्न बनाकर, कुछ बास पर चढकर नृत्य के द्वारा, कुछ बालक के आलिङ्गन के द्वारा और कुछ अगुलियो के स्फोटन, स्तनमर्दन और कटितट पीडन आदि के द्वारा पुरुषो को आकृष्ट करती हैं।

(१५९) और ये स्त्रियाँ बाधा डालने मे पाश की तरह, फँसाने के लिए कीचड़ की तरह, मारने के लिए मृत्यु की तरह, जलाने के लिए अग्नि की तरह, छिन्न-भिन्न करने मे तलवार की तरह होती हैं।

असि-मसिसारिच्छीण कतार-कवाड-चारयसमाणं ।
घोर-निउरंबकदरचलंत-वीभच्छभावाण ॥१६०॥

दोससयगागरीण अजससयविसप्पमाणहिययाण ।
कइयवपन्नत्तीणं ताण अन्नायसीलाणं ॥१६१॥

अन्नं रयति, अन्न रमंति, अन्नस्स दिंति [1]उल्लाव ।
अन्नो कडयतरिओ, अन्नो य पडतरे ठविओ ॥१६२॥

गंगाए वालुयं, सायरे जलं, हिमवतो य परिमाण ।
उग्गस्स तवस्स गइ, गब्भुप्पत्तिं [2]च विलयाए ॥१६३॥

सीहे [3]कुडुबयारस्स पोट्टल, [4]कुक्कुहाइय अस्से ।
जाणंति बुद्धिमंता, महिलाहियर्यं न जाणंति ॥१६४॥

एरिसगुणजुत्ताण ताण [5]कड इव असंठियमणाणं ।
न हु भे वीससियव्व महिलाण जीवलोगम्मि ॥१६५॥

निद्धन्नय च खलय, [6]पुप्फेहि विवज्जिय च आराम ।
निद्दुद्धिय च धेणु, लोए[7] वि अतेल्लियं पिंड ॥१६६॥

जेणतरेण निमिसति लोयणा, तक्खण च विगसंति ।
तेणतरेण [8]हियर्यं चित्त (? चिंत) सहस्साउलं होइ ॥१६७॥

(उवएसाणरिहजणा)

जड्डाण [9]वड्डाण निव्विण्णाण च निव्विसेसाणं ।
ससारसूयराण कहियं पि निरत्थय होई ॥१६८॥

(पुत्त-पियाईणमताणत्तं)

किं पुत्तेहिं ? पियाहि व ? अत्थेण[10] व पिंडिएण बहुएण ?
जो मरणदेस-काले न होइ आलंबण किंचि ॥१६९॥

---

१. उल्लाय वृपा० ॥ २ चवलवाए म० ॥ ३. कुडन्नुया° वृ० ॥ ४. °क्कुयाइ° स० पु० ॥ ५ कत्थइ असथियम° स० ॥ ६ पुप्फेहि निपुप्फिय च स० ॥ ७. °ए च्चिय ते° स० ॥ ८. °ययं वियारसहसाउलं सापा० ॥ ९ वुड्ढाणं सा० ॥ १० °ण विढप्पिएण ब°सा० ॥

(१६०) (स्त्रियाँ) तलवार के समान (तीक्ष्ण), स्याही के समान (कालिमायुक्त), गहन वन के समान (भ्रमित करने वाली), कपाट और कारागार के समान (बन्धन कारक) और प्रवाहशील अगाध जल के समान भयदायक होती है।

(१६१) ये स्त्रियाँ सैकड़ो दोषो की गगरी, अनेक प्रकार से अपयश को फैलानेवाली, कुटिल हृदयवाली और कपटपूर्ण विचार वाली होती हैं। इन स्त्रियो के स्वभाव को मतिमान भी नही जान सकते है।

(१६२) वे किसी अन्य को आकर्षित करती हैं, किसी अन्य के साथ रमण करती है और किसी दूसरे को आवाज देती हैं। अन्य किसी को पर्दे मे और किसी अन्य को वस्त्रो मे छिपाकर रखती हैं।

(१६३-१६४) गगा के वालु-कण, सागर का जल, हिमालय का परिमाण, उग्र तप का फल, गर्भ से उत्पन्न होने वाले बालक, सिंह की पीठ के बाल, पेट मे रहे हुए पदार्थ और घोडे के चलने की आवाज को बुद्धिमान मनुष्य जान सकते हैं किन्तु महिलाओ के हृदय को नही जान सकते हैं।

(१६५) इस प्रकार के गुणो से युक्त इन स्त्रियो का बन्दर के समान चचल मन ससार मे विश्वास करने योग्य नही होता है।

(१६६) लोक मे जैसे धान्य विहीन खल, पुष्पो से रहित बगीचा, दूध से रहित गाय, तेल से रहित तिलहन (निरर्थक) है उसी तरह स्त्रियाँ भी सुखहीन होने से निरर्थक हैं।

(१६७) जितने समय मे आँख मूँदकर खोली जाती हैं, उतने समय मे स्त्रियो का हृदय एव चित्त हजार बार व्याकुल हो जाता है।

(उपदेश के अयोग्य मनुष्य)

(१६८) मूर्ख, वृद्ध, विशिष्ट ज्ञान से हीन, निर्विशेष ससार मे शूकर के समान नीच प्रवृत्ति वालो को कुछ भी कहना निरर्थक है।

(पिता पुत्र आदि की अशरणता)

(१६९) पुत्र, पिता और बहुत सग्रह किये हुए उस धन से क्या लाभ? जो मरने के समय किंचित् भी सहारा नही दे सके।

पुत्ता चयन्ति, मित्ता चयति, भज्जा वि ण मय चयइ।
तं मरणदेस-काले न चयइ सुविइज्जओ[1] धम्मो ॥१७०॥

(धम्ममाहप्पं)

धम्मो ताणं, धम्मो सरणं, धम्मो गई पइट्ठा य।
धम्मेण सुचरिएण[2] य गम्मइ अजरामर ठाणं ॥१७१॥

पीईकरो वण्णकरो भासकरो जसकरो[3] रइकरो य।
अभयकर निव्वुइकरो पारत्तबिइज्जओ धम्मो ॥१७२॥

अमरवरेसु अणोवमरूव भोगोवभोगरिद्धी य।
विन्नाण-नागमेव य लब्भइ सुकएण धम्मेण ॥१७३॥

देविंद-चक्कवट्टित्तणाइं रज्जाइ इच्छिया भोगा।
एयाइं धम्मलाभप्फलाइं, जं चावि नेव्वाणं ॥१७४॥

(उवसंहारो)

आहारो उस्सासो सधिच्छिराओ य रोमकूवाइं[4]।
पित्तं रुहिरं सुक्क गणिय गणियप्पहाणेहिं ॥१७५॥

एयं सोउ सरीरस्स वासाण गणियपागडमहत्थं।
मोक्खपउमस्स[5] ईहह सम्मत्तसहस्सपत्तस्स ॥१७६॥

एयं सगडसरीर [6]जाइ-जरा-मरण-वेयणाबहुलं।
तह घत्तह काउ जे जह मुच्चह सव्वदुक्खाणं ॥१७७॥

॥ [7]तंदुलवेयालीपइण्णयं सम्मत्तं ॥

---

१ सुविभज्जिओ वृ० ॥ २. °एण ग° स० पु० ॥ ३ °करो य अभयकरो। निव्वुइकरो य सयय पार° सापा० ॥ ४. °वा य सं० पु० ॥ ५. °स्स इहइ स° पु० ॥ ६. वाहि-जरा° स० पु० ॥ ७ तदुलयं नाम पइन्नगं स° सं० ॥

(१७०) मृत्यु हो जाने पर पुत्र साथ छोड जाते हैं, मित्र भी साथ छोड जाते हैं, पत्नी भी साथ छोड जाती है, किन्तु सु-उपार्जित धर्म ही मरण के समय साथ नही छोडता है।

(धर्म-प्रभाव)

(१७१) धर्म रक्षक है, धर्म शरण है, धर्म ही गति और आधार है। धर्म का अच्छी तरह आचरण करने से अजर-अमर स्थान की प्राप्ति होती है।

(१७२) धर्म प्रीतिकर, कीर्तिकर, दीप्तिकर, यशकर, रतिकर, अभयकर, निवृत्तिकर और मोक्ष प्राप्ति मे मदद करने वाला है।

(१७३) सुकृत धर्म के द्वारा ही (मनुष्य को) श्रेष्ठ देवताओ के अनुपम रूप, भोग-उपभोग, ऋद्धि और ज्ञान-विज्ञान का लाभ प्राप्त होता है।

(१७४) देवेन्द्र का पद और चक्रवर्ती का पद, राज्य इच्छित भोग—ये सभी धर्माचरण के फल हैं और निर्वाण भी इसी का फल है।

(उपसंहार)

(१७५) यहाँ सौ वर्ष की आयु वाले मनुष्य के आहार, उच्छ्वास, सधि, शिरा, रोमकूप, पित्त, रुधिर, वीर्य की गणित की दृष्टि से परिगणना की गयी है।

(१७६) जिसका गणना के द्वारा अर्थ प्रकट कर दिया है ऐसे शरीर की (आयु के) वर्षों को सुन करके उस मोक्ष रूपी कमल के लिए (प्रयत्न) करो) जिसके सम्यकत्व रूपी हजारो पत्ते हैं।

(१७७) यह शरीर जन्म, जरा, मरण और वेदना से भरी हुई गाडी है इसको पा करके वही करो जिससे सभी दु खो से छूट जाओ।

१. परिशिष्ट

तंदुलवैचारिक-प्रकीर्णक की गाथानुक्रमणिका

संस्थान-परिचय

आगम अहिंसा-समता एव प्राकृत संस्थान आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के १९८१ के उदयपुर वर्षावास की स्मृति में जनवरी १९८३ मे स्थापित किया गया। संस्थान का मुख्य उद्देश्य जैन विद्या एवं प्राकृत के विद्वान तैयार करना, अप्रकाशित जैन साहित्य का प्रकाशन करना, जैन विद्या में रुचि रखने वाले विद्यार्थियो को अध्ययन की सुविधा प्रदान करना, जैन संस्कृति की सुरक्षा के लिए जैन आचार दर्शन और इतिहास पर वैज्ञानिक संस्करण तैयार कर प्रकाशित करवाना एवं जैन विद्या-प्रसार की दृष्टि से संगोष्ठिया, भाषण, समारोह आयोजित करना है। यह श्री अ० भा० सा० जैन संघ की एक मुख्य प्रवृत्ति है।

संस्थान राजस्थान सोसायटीज एक्ट १९५८ के अन्तर्गत रजिस्टर्ड है एवं संस्थान को अनुदान रूप मे दी गयी धनराशि पर आयकर अधिनियम की धारा ८० (G) और १२ (A) के अन्तर्गत छूट प्राप्त है।

जैन धर्म और संस्कृति के इस पुनीत कार्य मे आप इस प्रकार सहभागी बन सकते हैं—

(१) व्यक्ति या संस्था एक लाख रुपया या इससे अधिक देकर परम संरक्षक सदस्य बन सकते हैं। ऐसे सदस्यो का नाम अनुदान तिथिक्रम से सस्थान के लेटरपैड पर दर्शाया जाता है।

(२) ५१,००० रुपया देकर सरक्षक सदस्य बन सकते हैं।

(३) २५००० रुपया देकर हितैषी सदस्य बन सकते हैं।

(४) ११००० रुपया देकर सहायक सदस्य बन सकते हैं।

(५) १००० रुपया देकर साधारण सदस्य बन सकते हैं।

(६) सघ, ट्रस्ट, बोर्ड, सोसायटी आदि जो सस्था एक साथ २०,००० रुपये का अनुदान प्रदान करती है वह संस्थान परिषद की संस्था सदस्य होगी।

(७) अपने बुजुर्गों की स्मृति मे भवन-निर्माण हेतु व अन्य आवश्यक यंत्रादि हेतु अनुदान देकर आप इसकी सहायता कर सकते हैं।

(८) अपने घर पर पड़ी प्राचीन पाडुलिपियां, आगम-साहित्य व अन्य उपयोगी साहित्य को प्रदान कर सकते हैं।

आपका यह सहयोग ज्ञान-साधना के रथ को प्रगति के पथ पर अग्रसर करेगा।